जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2533

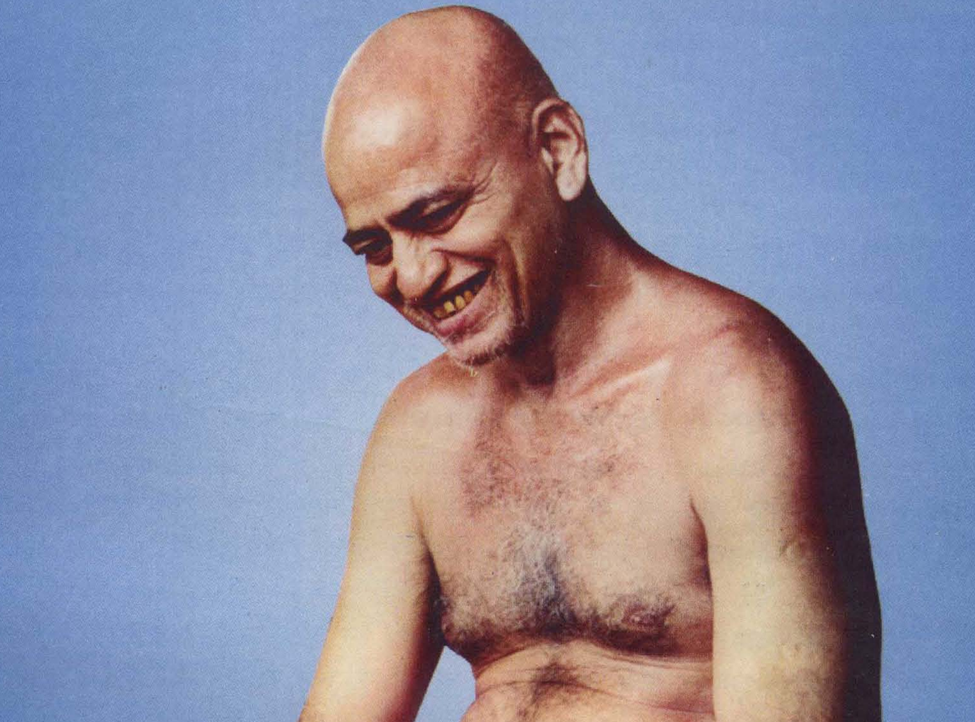

प.पू. आचार्य श्री विद्यासागर जी

(आचार्यपदारोहण 22 नवम्बर 1972)

मार्गशीर्ष, वि.सं. 2063

नवम्बर, 2006

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल्य 10/-

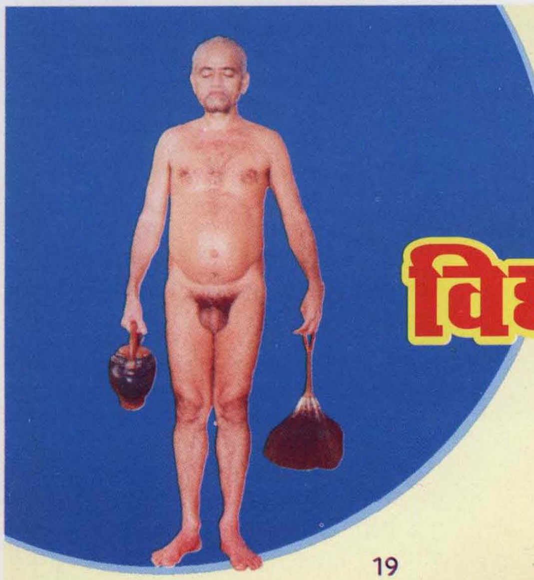

आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे

19

हुआ प्रकाशित मैं छुपा, प्रभु हैं प्रकाश पुंज।
हुआ सुवासित, महकते तुम पद विकास कुंज॥

20

निरे निरे जग-धर्म हैं, निरे-निरे जग कर्म।
भले बुरे कुछ ना अरे! हरे, भरे हो नर्म॥

21

विषयों से क्यों खेलता, देता मन का साथ।
बाँमी में क्या डालता? भूल कभी निज हाथ॥

22

खेत, क्षेत्र में भेद, इक-फलता पुण्या-पुण्य।
क्षेत्र कर सबका भला, फलता सुख अक्षुण्ण॥

23

ऐसा आता भाव है, मन में बारम्बार।
पर दुख को यदि ना मिटा सकता जीवन भार॥

24

पल-भर पर-दुख देख भी सकते ना जिनदेव।
तभी दृष्टि आसीन है, नासा पर स्वयमेव॥

25

सूखे परिसर देखते, भोजन करते आप।
फिर भी खुद को समझते, दयामूर्ति निष्पाप॥

26

हाथ देख मत देख लो, मिला बाहुबल-पूर्ण।
सदुपयोग बल का करो, सुख पाओ संपूर्ण॥

27

उगते अंकुर का दिखा, मुख सूरज की ओर।
आत्मबोध हो तुरत ही, मुख संयम की ओर॥

28

दयारहित क्या धर्म है? दयारहित क्या सत्य?
दया रहित जीवन नहीं, जल बिन मीन असत्य॥

29

पानी भरते देव हैं, वैभव होता दास।
मृग-मृगेन्द्र मिल बैठते, देख दया का वास॥

30

कूप बनो तालाब ना, नहीं कूप -मंडूक।
बरसाती मेंढक नहीं, बरसो घन बन मूक॥

31

अग्रभाग पर लोक के, जा रहते नित सिद्ध।
जल में ना, जल पर रहे, घृत तो ज्ञात प्रसिद्ध॥

32

साधु, गृही सम ना रहे, स्वाश्रित-भाव समृद्ध।
बालक-सम ना नाचते, मोदक खाते वृद्ध॥

33

तत्त्व-दृष्टि तज बुध नहीं, जाते जड़ की ओर।
सौरभ तज मल पर दिखा, भ्रमर-भ्रमित कब और?॥

34

दया धर्म के कथन से, पूज्य बने ये छन्द।
पापी तजते पाप हैं, दृग पा जाते अन्ध॥

35

सिद्ध बने बिन शुद्ध का, कभी न अनुभव होय।
दुग्ध-पान से स्वाद क्या, घृत का सम्भव होय?॥

36

स्वर्ण बने वह कोयला, और कोयला स्वर्ण।
पाप-पुण्य का खेल है, आतम में ना वर्ण॥

'सर्वोदयशतक' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UPHIN/2006/16750

नवम्बर 2006 मासिक वर्ष 5, अङ्क 11

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282 002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

	पृष्ठ
◆ **आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे**	आ.पृ. 2
◆ **मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ**	आ.पृ. 3
◆ **स्तवन** : मुनि श्री योगसागर जी	आ.पृ. 4
● श्री श्रेयांसनाथ-स्तवन	
● श्री वासुपूज्यनाथ-स्तवन	
◆ **सम्पादकीय** : मृत्यु का कारण उपस्थित होने पर स्वधर्मरक्षा का प्रयत्न : सल्लेखना	2
◆ **प्रवचन** : मानवता : आचार्य श्री विद्यासागर जी	10
◆ **लेख**	
● जीवन का अन्त करने की इच्छा सर्वोपरि : श्री पानाचन्द जैन	14
● नये सिरे से छिड़ी पुरानी बहस : श्री महीपसिंह	16
● यज्ञोपवीत और जैनधर्म : स्व.पं. नाथूराम जी प्रेमी	18
● वैदिक व्रात्य और श्रमण संस्कृति : प्रो. फूलचन्द्र प्रेमी	20
● वन्दना का व्याकरण : प्रा. पं. निहालचन्द्र जैन	24
● जैन समाज को राष्ट्रीय स्तर पर अल्पसंख्यक घोषित किया जाय : अरुण जैन	26
● अब मिलायें सेहत की भी कुण्डली : डॉ. ज्योति जैन	27
◆ **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा	28
◆ **समाचार**	25, 31, 32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
जिनभाषित से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्याय क्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

मृत्यु का कारण उपस्थित होने पर स्वधर्मरक्षा का प्रयत्न : सल्लेखना

हाल ही में राजस्थान में एक जैन साध्वी द्वारा मृत्यु के निकट आ जाने पर सल्लेखनाविधि या संथाराविधि (पवित्र आचार-विचार-पूर्वक मरने की विधि) अपनाये जाने की एक सज्जन ने सतीप्रथा से तुलना कर उसे आत्महत्या का नाम दिया है और उस पर रोक लगाने के लिए राजस्थान उच्च न्यायालय में याचिका प्रस्तुत की है। यह जैनधर्म के सिद्धान्तों और सल्लेखना के अर्थ से अनभिज्ञ होने का कुपरिणाम है तथा एक अहिंसा-अपरिग्रह-अनेकान्त-प्रधान, लोककल्याणकारी, प्राचीनधर्म को छिन्न-भिन्न करने की धर्मस्वातन्त्र्य-विरोधी, अलोकतान्त्रिक साजिश है। यदि उक्त सज्जन ने जैनधर्म- ग्रन्थों का अध्ययन किया होता, तो वे सल्लेखना को आत्महत्या कहने की गलती न करते, क्योंकि तब वे समझ जाते कि वह आत्महत्या नहीं है, अपितु निकट आयी हुयी और न टाली जाने योग्य मृत्यु से घबरा कर प्राणरक्षा के लिए धर्म से च्युत करनेवाली पापक्रियाओं में न फँसने की साधना है। ईसा की तीसरी सदी में हुए जैनाचार्य समन्तभद्र ने सल्लेखना अर्थात् समाधिमरण (शान्तिपूर्वक मरण) का लक्षण '**रत्नकरण्ड श्रावकाचार**' की निम्नलिखित कारिका में बतलाया है-

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः॥५/१॥

अनुवाद- जब किसी भयंकर उपसर्ग (प्राकृतिक या मनुष्य-देव-तिर्यंच-जनित विपदा), घोर अकाल, अत्यन्त वृद्धावस्था और किसी असाध्य रोग के कारण प्राणों पर संकट आ जाय और उसे नैतिकमार्ग और धर्ममार्ग (अहिंसकमार्ग) से टाला न जा सके, मृत्यु सुनिश्चित हो जाय, तो नैतिकता और धर्म की रक्षा के लिए अर्थात् अपने को अनैतिकमार्ग और पापमार्ग में प्रवृत्त होने से बचाने के लिए धर्मपूर्वक प्राणों का परित्याग करना सल्लेखना, समाधिमरण या संथारा कहलाता है।

सल्लेखना की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि सल्लेखना में आत्महत्या नहीं की जाती, अपितु जब किसी आततायी मनुष्य या सिंहादि हिंस्र पशु के द्वारा मुनि या श्रावक की हत्या की जा रही हो अथवा भूकम्प, बाढ़, अग्नि बुढ़ापे या भयंकर रोग से हत्या हो रही हो और उससे बचने का नैतिक और धर्म-संगत उपाय न हो, तब मृत्यु से बचाने में असमर्थ आहार-जल-औषधि आदि के परित्याग का व्रत लेकर अर्थात् समस्त सांसारिक पदार्थों से राग छोड़कर धर्मपूर्वक समभाव और क्षमाभाव से मृत्यु को स्वीकार कर लेने का नाम सल्लेखना है। और जब ऐसा होता है, तब न तो जीवन से मोह रहता है, न मृत्यु की चाह होती है। जीवनमोह और मृत्यु की चाह होने को सल्लेखना में दोष माना गया है। इस नियम का उल्लेख ईसा की द्वितीय शताब्दी में हुए आचार्य उमास्वामी ने जैनधर्म के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ '**तत्त्वार्थसूत्र**' के निम्नलिखित सूत्र में किया है-

"**जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि॥**" ७/३७॥

अनुवाद- जीवित रहने की इच्छा, मरने की इच्छा, मित्रों से अनुराग, पूर्वानुभूत सुखों का बार-बार स्मरण और सल्लेखना से स्वर्गादिफलों की चाह, ये पाँच सल्लेखना के अतिचार (उसमें दोष उत्पन्न वाले कारण) हैं।

इस आर्षवचन से सिद्ध है कि सल्लेखना में मुनि या श्रावक मरने की चाह नहीं करता, बल्कि बाह्य कारणों से मृत्यु के अनिवार्य हो जाने पर उससे भय त्याग देता है और अपने अहिंसादि व्रतों की रक्षा करते हुए मृत्यु का वरण करता है। **इस प्रकार सल्लेखना आत्महत्या नहीं है, अपितु बाह्य कारणों से मृत्यु के अनिवार्य हो जाने पर अपने धर्म की रक्षा का प्रयत्न है।**

सल्लेखना आत्महत्या क्यों नहीं?

आत्महत्या करनेवाला क्रोध, शोक, विषाद, भय, निराशा आदि के आवेग में मृत्यु के कारण स्वयं जुटाता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सल्लेखनामरण में मृत्यु के कारण बाहर से आते हैं। आत्महत्या में मनुष्य स्वयं ही फाँसी लगाता हैं, कुए में कूदता है, आग में जलता है, जहर खाता है या अपने को गोली मार लेता है। लेकिन सल्लेखना-मरण दूसरों के द्वारा प्राणघातक उपसर्ग किये जाने पर, प्राणघातक प्राकृतिक विपदा आने पर अथवा प्राणघातक असाध्यरोग या अतिवृद्धावस्था हो जाने पर होता है। और इसमें भी विशेषता यह है कि सल्लेखनाव्रतधारी मरते समय न तो क्रोध के आवेग में रहता है, न शोक के, न भय के, न विषाद के और न निराशा के। वह परम शान्तभाव में स्थित रहता है। सल्लेखना आत्महत्या क्यों नहीं है, इसका खुलासा पाँचवीं शताब्दी ई० के जैनाचार्य पूज्यपाद स्वामी ने निम्नलिखित शब्दों में किया है-

''स्यान्मतमात्मवधः प्राप्नोति, स्वाभिसन्धिपूर्वकायुरादिनिवृत्तेः? नैष दोषः, अप्रमत्तत्वात्। 'प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा' इत्युक्तम्। न चास्य प्रमादयोगोऽस्ति। कुतः? रागाद्यभावात्। रागद्वेषमोहाविष्टस्य हि विषशस्त्राद्युपकरणप्रयोग-वशादात्मानं घ्नतः स्वघातो भवति। न सल्लेखनां प्रतिपन्नस्य रागादयः सन्ति ततो नात्मवधदोषः। उक्तं च-

रागादीणमणुप्पा अहिंसगत्तं ति देसिदं समये।
तेसिं च उप्पत्ती हिंसेति जिणेहि णिद्दिट्ठा॥

किं च मरणस्यानिष्टत्वाद्यथा वणिजो विविधपण्यदानादानसञ्चयपरस्य स्वगृहविनाशोऽनिष्टः। तद्विनाशकारणे च कुतश्चिदुपस्थिते यथाशक्ति परिहरति। दुष्परिहारे च पण्यविनाशो यथा न भवति तथा यतते। एवं गृहस्थोऽपि व्रतशीलपण्यसञ्चये प्रवर्तमानः तदाश्रयस्य न पातमभिवाञ्छति। तदुपप्लवकारणे चोपस्थिते स्वगुणाविरोधेन परिहरति। दुष्परिहारे च यथा स्वगुणविनाशो न भवति तथा प्रयतत इति कथमात्मवधो भवेत्? (सर्वार्थसिद्धि ७/२२)।

अनुवाद - शंका : चूँकि सल्लेखना में अपने आभप्राय से आयु आदि का त्याग किया जाता है, इसलिए यह आत्मघात है। **समाधान** : ऐसा नहीं है, क्योंकि सल्लेखना में प्रमाद (रागद्वेषमोह) का अभाव है। 'प्रमत्तयोग से (रागद्वेषमोह के कारण = क्रोधादि के आवेग में)प्राणों का घात करना हिंसा है' यह पहले (तत्त्वार्थसूत्र/अध्याय ७/सूत्र १३ में) कहा जा चुका है। किन्तु सल्लेखनाव्रतधारी के प्रमाद नहीं होता, क्योंकि उसमें रागादि का अभाव होता है। जो मनुष्य रागद्वेषमोह से आविष्ट होकर विष, शस्त्र आदि उपकरणों से अपना वध करता है, वह आत्मघाती होता है। सल्लेखना को प्राप्त मनुष्य में रागद्वेषमोह नहीं होते, अतः वह आत्मघाती नहीं होता। कहा भी गया है-

''जिनेन्द्रदेव ने यह उपदेश दिया है कि रागादिभावों की उत्पत्ति न होना अहिंसा है, और उनका उत्पन्न होना हिंसा।''

इसके अतिरिक्त मरना कोई भी नहीं चाहता। जैसे कोई व्यापारी अपने घर में अनेक प्रकार की विक्रेय वस्तुओं का संग्रह और देनलेन करता है, उसे अपने घर का विनाश इष्ट नहीं होता। फिर भी यदि कहीं से उसके विनाश का कारण उपस्थित हो जाय, तो वह यथाशक्ति उसे टालने का प्रयत्न करता है। किन्तु यदि टालना संभव न हो, तो घर में रखी विक्रेय सामग्री को नष्ट होने से बचाने की कोशिश करता है, इसी प्रकार गृहस्थ भी अपने शरीररूपी घर में व्रत-शीलरूप सामग्री का संचय करता है, अतः वह उस सामग्री के आश्रयभूत शरीर का विनाश नहीं होने देना चाहता। फिर भी यदि उसके विनाश का कारण उपस्थित हो जाता है, तो वह अपने व्रतशीलादि गुणों को आघात न पहुँचाते हुए विनाश के कारण का परिहार करता है। किन्तु शरीरविनाश के कारण का परिहार संभव न होने पर ऐसा प्रयत्न करता है, जिससे अपने गुणों का विनाश न हो। ऐसा करना आत्मवध कैसे हो सकता है?'' (स.सि.७/२२)

इस आर्षवचन से स्पष्ट है कि सल्लेखना में न तो मरने की इच्छा की जाती है, न मरने का प्रयत्न, अपितु जब उपसर्ग, दुर्भिक्ष, रोग, बुढ़ापा आदि बाह्य कारण मुनि या श्रावक को मृत्यु के मुख में घसीट कर ले जाने लगते हैं, तब शरीर को न बचा पाने की स्थिति में वह अपने व्रत-शील-संयम आदि धर्म की रक्षा का प्रयत्न करता है। इस प्रकार सल्लेखना में मनुष्य के पास मरने के कारणों को स्वयं जुटाने का अवसर ही नहीं रहता, क्योंकि वे बाहर से ही अपने-आप जुट जाते हैं। अपने-आप उपस्थित मृत्यु के कारणों को जब टालना असंभव हो जाता है, तभी तो सल्लेखनाव्रत ग्रहण किया जाता है, अतः इसे आत्महत्या कहने के लिए तो कोई कारण ही नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म और न्याय की रक्षा के लिए मृत्यु का वरण बलिदान है, आत्महत्या नहीं

यदि कहा जाय कि मृत्यु का कारण उपस्थित होने पर जान की रक्षा जैसे भी बने वैसे की जाय, अन्यथा जो मृत्यु होगी, वह आत्महत्या कहलायेगी, तो देश की आजादी के लिए अँगरेजों की तोपों और बन्दूकों के सामने खड़े होकर अपनी जान दे देनेवाले शहीदों की मौत आत्महत्या कहलायेगी, बलिदान नहीं। सरदार भगतसिंह का फाँसी पर चढ़ जाना और चन्द्रशेखर आजाद का अँगरेजों की पकड़ से बचने के लिए अपने को गोली मार लेना भी आत्मघात की परिभाषा में आयेगा, क्योंकि ये अँगरेजों के सामने घुटने टेककर आत्मरक्षा कर सकते थे। किन्तु इनके द्वारा मौत को गले लगाये जाने के कदम को संसार के किसी भी व्यक्ति ने आत्महत्या नहीं कहा, सभी ने बलिदान कहा है। इसी प्रकार देशद्रोह के लिए तैयार न होनेवाले किसी सैनिक या नागरिक को देश के शत्रु मार डालते हैं, अपने शीलभंग का विरोध करनेवाली किसी स्त्री का दुष्ट लोग गला घोंट देते हैं, किसी मनुष्य या पशु की हत्या से इनकार करनेवाले की हत्या कर दी जाती है, अपना धर्म छोड़ने या बदलने के लिए तैयार न होनेवाले को मौत के घाट उतार दिया जाता है, तो स्वधर्म की रक्षा के लिए इन लोगों का मृत्यु को वरण कर लेना क्या आत्महत्या कहा जा सकता है? इसी प्रकार किसी अहिंसाव्रतधारी मनुष्य को ऐसा रोग हो जाय, जो किसी प्राणी के अंगों से बनी दवा से ही दूर हो सकता हो, किन्तु वह अपने धर्म की रक्षा के लिए उस मांसमय औषधि का सेवन न करे और रोग से उसकी मृत्यु हो जाय, तो क्या उसे आत्महत्या कहा जायेगा? अथवा किसी शाकाहारव्रतधारी मनुष्य को कोई डाकू या आतंकवादी पकड़ कर ले जाय और उसे मांस-मद्य और नशीली दवाओं के सेवन पर मजबूर करे, अन्यथा मार डालने की धमकी दे, तो उसका मांसादि का सेवन न कर डाकू या आतंकवादी के हाथों मर जाना क्या आत्मघात की परिभाषा में आयेगा? अथवा कभी भयंकर अकाल पड़ने से भक्ष्य पदार्थों का अभाव हो जाय तथा मनुष्य ऐसे पदार्थों का भक्षण न करे, जिससे उसका धर्म नष्ट होता हो या शरीर के अपंग होने का डर हो, तब यदि वह भूख से मर जाता है, तो क्या उसे आत्महत्या कहेंगे? दुनिया में ऐसी कोई भी डिक्शनरी नहीं है, जिसमें इन्हें आत्महत्या कहा गया हो, सर्वत्र इन्हें बलिदान शब्द से ही परिभाषित किया गया है। संसार के किसी भी धर्म या कानून में मौत से डरकर प्राण बचाने के लिए देश की आजादी की लड़ाई से विमुख हो जाने को, देशद्रोह के लिए तैयार हो जाने को, किसी स्त्री का अपना शीलभंग स्वीकार कर लेने को अथवा अहिंसाव्रतधारी या शाकाहारधर्मावलम्बी के मांसाहारी हो जाने को जायज नहीं ठहराया जा सकता, अपितु देशरक्षा और धर्मरक्षा के लिए देश के शत्रुओं, बलात्कारियों, डाकुओं, आतंकवादियों, अकाल या रोग के हाथों मारे जाने को ही उचित ठहराया जा सकता है। इसलिए धर्म और कानून की नजरों में भी ऐसी मृत्यु बलिदान की ही परिभाषा में आ सकती है, आत्महत्या की परिभाषा में नहीं। सुप्रसिद्ध भारतीय मनीषी भर्तृहरि ने कहा है-

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छति वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

अर्थात् अपने को नीतिनिपुण समझने वाले लोग हमारे न्यायसंगत आचरण कि निन्दा करें अथवा प्रशंसा, उससे हमें आर्थिक लाभ हो या हानि अथवा हम तुरन्त मरण को प्राप्त हो जायँ या सैकड़ों वर्षों तक जियें, न्यायशील पुरुष न्यायमार्ग का परित्याग नहीं करते।

इस सूक्ति में भर्तृहरि ने धर्म और न्याय की रक्षा के लिए अपने प्राणों का परित्याग कर देने को उत्कृष्ट और अनुकरणीय आचरण कहा है, आत्महत्या नहीं।

जैसे गरीबी के कारण भुखमरी से अर्थात् भोजन न मिलने से होनेवाली मृत्यु आत्महत्या नहीं कहला सकती, वैसे ही आततायियों द्वारा किये जानेवाले उपसर्ग से अथवा अकाल पड़ने से अथवा अन्य किसी परिस्थिति से मुनि को शुद्ध भोजन न मिले, तो भोजन के अभाव में होनेवाली उनकी मृत्यु को आत्महत्या नहीं कहा जा सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे राजनीतिक स्वतंत्रता मनुष्य का जन्मसिद्ध या मौलिक अधिकार है, वैसे ही स्वधर्मरक्षा की स्वतंत्रता भी मनुष्य का मौलिक अधिकार है। अतः सल्लेखना धर्मरक्षा का प्रयास होने के कारण जैनधर्मावलम्बियों का मौलिक अधिकार है। जैसे किसी मांसाहारी को कानून के द्वारा शाकाहार के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता, वैसे ही किसी शाकाहारी को मांसाहार के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता, भले ही इससे उसके प्राण चले जायँ। यदि धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र में किसी नागरिक को स्वधर्मविरुद्ध आहार-औषधि ग्रहण करने के लिए अथवा स्वधर्मविरुद्ध जीवनपद्धति अपनाने के लिए बाध्य किया जाता है, तो न तो वह लोकतंत्र कहला सकता है, न धर्मनिरपेक्ष। अतः बाह्य कारणों से प्राणसंकट उपस्थित हो जाने पर स्वधर्मविरुद्ध आहार-औषधि एवं स्वधर्मविरुद्ध जीवनपद्धति को स्वीकार न करते हुए अहिंसाधर्म एवं न्यायामार्ग की रक्षा के लिए, उपस्थित हुए प्राणसंकट को स्वीकार कर लेने का अधिकार अर्थात् सल्लेखना का अधिकार मनुष्य को अपने धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक राज्य के संविधान से प्राप्त है।

प्रसन्नता होने पर ही सल्लेखना संभव

जैसा कि पूर्व में कहा गया है, मृत्यु का कारण उपस्थित हो जाने पर धर्म की रक्षा के लिए कटिबद्ध होकर धर्मविरुद्ध एवं अनैतिक उपायों से प्राणरक्षा का प्रयत्न न करना सल्लेखना है। यह कार्य ज्ञानी और धर्म में आस्थावान् मनुष्य ही कर सकता है, क्योंकि उसे ही सल्लेखना-ग्रहण में प्रसन्नता हो सकती है। प्रसन्नता के अभाव में सल्लेखना बलपूर्वक ग्रहण नहीं करायी जा सकती। प्रसन्नता होने पर मनुष्य स्वयं ही ग्रहण करता है। इसका स्पष्टीकरण पूज्यपाद स्वामी ने निम्नलिखित शब्दों में किया है- "--- **यस्मादसत्यां प्रीतौ बलान्न सल्लेखना कार्यते। सत्यां हि प्रीतौ स्वयमेव करोति।**" (सर्वार्थसिद्धि ७/२२)।

हिन्दूधर्म में संन्यासमरण : सल्लेखनामरण

जैनधर्म में विहित सल्लेखनामरण के समान हिन्दूधर्म में भी संन्यासमरण का विधान किया गया है। संन्यासमरण के प्रकरण में 'संन्यास' का अर्थ अनशन अर्थात् आहारत्याग है। यथा- "**संन्यासवत्यनशने पुमान् प्रायः**" इत्यमरः (भट्टिकाव्य-टीका ७/७३ पं० शेषराज शर्मा शास्त्री/चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस बाराणसी/१९९८ ई.)। और 'प्राय' का अर्थ है अनशन, मरण, तुल्य और बाहुल्य- "**प्रायश्चानशने मृत्यौ तुल्यबाहुल्ययोरपि**" इति विश्वः। '**संन्यास**' (**आहारत्याग**) को '**प्रायोपवेशिका**' भी कहा गया है। यथा-

उवाच मारुतिर्वृद्धे संन्यासिन्यत्र वानरान्।
अहं पर्यायसम्प्राप्तां कुर्वे प्रायोपवेशिकाम्।। ७/७६ ।। भट्टिकाव्य।

अनुवाद- हनुमान् जी ने वानरों से कहा- "वृद्ध जाम्बवान् के संन्यासी हो जाने पर (अनशन आरंभ कर देने पर) मैं भी इस पर्वत पर क्रमप्राप्त प्रायोपवेशिका (अनशन) आरंभ करता हूँ।

"**संन्यासिनि = अनशनवति**", "**प्रायोवशिकाम् =अनशनम्**" (पं० शेषराज शर्मा शास्त्रीकृत टीका/भट्टिकाव्य ७/७६)।

यह अनशन (आहारत्याग) मरण के लिए किया जाता है और जिसका इस तरह मरण होता है, उसका दाहसंस्कार नहीं किया जाता- "**अत्र प्रायोपवेशतो मरणे दाहसंस्काराऽभावादिति भावः।**" (पं० शेषराज शर्मा शास्त्रीकृत टीका/भट्टिकाव्य ७/७८)।

अनशन द्वारा मरण को '**प्रायोपासना**' शब्द से भी अभिहित किया गया है- "**प्रायोपासनया= मरणानशनाऽनुष्ठानेन।**" (वही/भट्टिकाव्य ७ / ७३)।

हिन्दूपुराणों में आहारत्याग द्वारा किये जानेवाले मरण के लिए '**संन्यासमरण**' के अतिरिक्त '**प्राय**', **प्रायोपवेश**, **प्रायोपवेशन**, **प्रायोपवेशिका**, **प्रायोपवेशनिका**, **प्रायोपगमन** एवं **प्रायोपेत** शब्द भी प्रयुक्त हैं। (देखिए, वामन शिवराम आप्टे-संस्कृत-हिन्दी-कोश, 'प्राय')। सर एम० मोनियर विलिअम्स ने संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी में इन शब्दों के अर्थ का प्रतिपादन इस प्रकार किया है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संन्यास = abstinence from food, giving up the body.

संन्यासिन् = abstaining from food (Bhatt).

प्राय (पुं.) = departure from life, seeking death by fasting (as a religious or penitentiary act, or to enforce compliance with a demand).

आमरण अनशन, किसी इष्टसिद्धि के लिए खाना-पीना छोड़कर धरना देना (आप्टेकोश)।

प्रायोपगमन = going to meet death, seeking death (by abstaing from food).

प्रायोपवेशन = abstaining from food and awaiting in a sitting posture the approach of death.

सल्लेखना के लिए '**संन्यासमरण**' और '**प्रायोपगमन**' शब्दों का प्रयोग **जैनशास्त्रों** में भी किया गया है। यथा- "**अथ संन्यासक्रिया-प्रयोगविधिं श्लोकद्वयेनाह**" = आगे संन्यासपूर्वक मरण की विधि दो श्लोकों में कहते हैं। (अनगारधर्मामृत ९/६१-६२/उत्थानिका/पृ.६७३/हिन्दी अनुवाद : सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री)।

पायोपगमणमरणं भत्तपइण्णा य इंगिणी चेव।
तिविहं पंडितमरणं साहुस्स जहुत्तचारिस्स॥ २८॥ भगवती-आराधना।

अनुवाद- प्रायोपगमन-मरण, भक्तप्रतिज्ञा-मरण और इंगिनीमरण, ये तीन पण्डितमरण हैं। ये शास्त्रोक्त आचरण करनेवाले साधु के होते हैं।

"प्राय अर्थात् संन्यास की तरह उपवास के द्वारा जो समाधिमरण होता है, उसे **प्रायोपगमन समाधिमरण** कहते हैं।" (षट्खण्डागम-धवलाटीका / विशेषार्थ / पुस्तक १/१, १, १/ पृष्ठ २४/१९९२ ई०/ सोलापुर)। उपनिषदों में कहा गया है कि परिव्राजक एवं परमहंसपरिव्राजक साधु 'संन्यास' (अनशन) से ही देहत्याग करते हैं-

१. "**तदेतद्विज्ञाय ब्राह्मणः परिव्रज्य --- संन्यासेनैव देहत्यागं करोति।**" (नारदपरिव्राजकोपनिषत् / तृतीयोपदेश/ ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः / पृष्ठ २६८)।

२. "--- **परमहंसाचरणेन संन्यासेन देहत्यागं कुर्वन्ति ते परमहंसा नामेत्युपनिषत्।**" (भिक्षुकोपनिषत् / ईशाद्यष्टोत्तर. / पृ. ३६८)।

३. "--- **कुटीचको वा बहूदको वा हंसो वा परमहंसो वा --- संन्यासेनैव देहत्यागं करोति स परमहंस-परिव्राजको भवति।**" (परमहंसपरिव्राजकोपनिषत्/ईशाद्यष्टोत्तर./पृ. ४१९)।

संन्यासमरण को '**योगमरण**' शब्द से भी अभिहित किया गया है और बतलाया गया है कि रघुकुल के राजा जीवन के अन्त में योग से शरीर का परित्याग करते थे-

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥ १/८॥

चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहते हैं- "**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**" (पातञ्जलयोगदर्शन/ समाधिपाद/सूत्र २)। इसके लिए प्रत्याहार आवश्यक होता है, जिसमें इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से निवृत्त होकर चित्ताकार सदृश हो जाती हैं- "**स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः**" (वही/साधनपाद/सूत्र ५४)। इससे योग में आहारादि का त्याग अपने-आप हो जाता है।

हिन्दूपुराणों में दो प्रकार के नर-नारियों को स्वर्ग या मोक्षफल पाने की इच्छा से अग्निप्रवेश, जलप्रवेश अथवा अनशन द्वारा देहत्याग का अधिकारी बतलाया गया है-

समासक्तो भवेद्यस्तु पातकैर्महदादिभिः।
दुश्चिकित्स्यैर्महारोगैः पीडितो वा भवेत्तु यः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वयं देहविनाशस्य काले प्राप्ते महामतिः।
आब्रह्माणं वा स्वर्गादिफलजिगीषया।
प्रविशेज्ज्वलनं दीप्तं कुर्यादनशनं तथा॥
ऐतेषामधिकारोऽस्ति नान्येषां सर्वजन्तुषु।
नराणामथ नारीणां सर्ववर्णेषु सर्वदा॥

(रघुवंश महाकाव्य ८/९४/मल्लिनाथ सूरिकृत संजीविनी टीका में उद्धृत)

अनुवाद- जो महापापों से लिप्त हो अथवा असाध्य महारोगों से पीड़ित हो, ऐसा महामति देह विनाशकाल के स्वयं प्राप्त हो जाने पर स्वर्ग या मोक्षफल पाने की इच्छा से जलती हुई अग्नि में प्रवेश करे अथवा अनशन करे। समस्त प्राणियों में ऐसे ही नर-नारियों को, चाहे वे किसी भी वर्ण के हों, इन उपायों से मरण का अधिकार है, अन्य किसी को नहीं।

इस विधान का अनुसरण करते हुए श्रीराम के पितामह महाराज अज ने देहविनाश का काल आ जाने पर अपने रोगोपसृष्ट शरीर का गंगा और सरयू के संगम में परित्याग कर दिया और तत्काल स्वर्ग में जाकर देव हो गये। इसका वर्णन महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश' महाकाव्य के निम्नलिखित पद्यों में किया है-

सम्यग्विनीतमथ वर्महरं कुमारमादिश्य रक्षणविधौ विधिवत्प्रजानाम्।
रोगोपसृष्टतनुदुर्वसतिं मुमुक्षुः प्रायोपवेशनमतिर्नृपतिर्बभूव॥ ८/९४॥

तीर्थे तोयव्यतिकरभवे जह्नुकन्यासरय्वो-
र्देहत्यागादमरगणनालेख्यमासाद्यसद्यः।
पूर्वाकाराधिकतररुचा सङ्गतः कान्तयासौ
लीलागारेष्वरमत पुनर्नन्दनाभ्यन्तरेषु॥ ८/९५॥

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि सल्लेखनामरण या संन्यासमरण का विधान जैनधर्म के समान हिन्दूधर्म में भी है। यद्यपि जैनधर्म में मरण का कारण उपस्थित होने पर जलप्रवेशादि द्वारा देहत्याग का विधान नहीं है, मात्र आहार-औषधि के त्याग द्वारा धर्मरक्षा करते हुए देहत्याग की आज्ञा है, तथापि हिन्दूधर्म में अनशनपूर्वक भी देह विसर्जन का विधान है, अतः सल्लेखनामरण या संन्यासमरण भारत के बहुसंख्यक नागरिकों द्वारा स्वीकृत धार्मिक परम्परा है। वर्तमान युग के महान् स्वतंत्रतासंग्राम-सेनानी एवं धार्मिक नेता आचार्य बिनोवा भावे ने मृत्युकाल में आहार-औषधि का परित्याग कर संन्यासमरण-विधि द्वारा देहविसर्जन किया था।

महात्मा गाँधी देश की स्वतंत्रता, हिन्दू-मुस्लिम एकता, दलितों के साथ समान व्यवहार आदि के उद्देश्य से कई बार आमरण अनशन पर बैठे। कुछ दिन पूर्व सुश्री मेधा पाटकर ने भी गुजरात के सरदार सरोवर बाँध की ऊँचाई कम कराने एवं विस्थापितों को उचित मुआवजा दिलाने के लिए आमरण अनशन प्रारम्भ किया था। यद्यपि राजनीतिक कारणों से इन राजनेताओं के प्राण बचाने के लिए सरकार शीघ्र समझौता कर लेती है, यदि समझौता न करे, तो मृत्यु अवश्यंभावी है। इस तरह सल्लेखना का एक नया संस्करण राजनीति एवं लोकनीति में भी प्रविष्ट हो गया है।

Dr. T.G. Kalghatgi लिखते हैं- " In the present political life of our country, fasting unto death for specific ends has been very comman." ('Jain View of Life'/Jain samskrti Samraksaka Sangha Sholapur, 1984 A.D./p. 185).

सतीप्रथा से तुलनीय नहीं

संन्यासमरण या सल्लेखनामरण की सतीमरण से तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि सती होने वाली स्त्री-

१. अपनी मृत्यु का अपरिहार्य कारण उपस्थित न होने पर भी अपना प्राणान्त कर लेती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. उसके सामने धर्ममय जीवनपद्धति के विनष्ट होने का संकट नहीं होता।

३. उसका मन रागद्वेष से मुक्त न होकर मृत पति के प्रति तीव्रराग से और विधवाजीवन के कष्टों के प्रति भीरुताजन्य द्वेष से ग्रस्त होता है।

४. सतीमरण से न तो मरनेवाली स्त्री को कोई धार्मिक लाभ होता है, न उसके मृत पति को। संस्कृत के सुप्रसिद्ध गद्यकवि **बाणभट्ट** स्वरचित '**कादम्बरी**' नामक उपन्यास में सतीमरण को अत्यन्त अज्ञानतापूर्ण एवं अहितकर कृत्य बतलाते हुए लिखते हैं-

"**यदेतदनुमरणं नाम तदतिनिष्फलम्, अविद्वज्जनाचरित एष मार्गः। --- अत्र हि विचार्यमाणे स्वार्थ एव प्राणपरित्यागोऽयम् असह्यशोकवेदनाप्रतीकारत्वादात्मनः। उपरतस्य तु न कमपि गुणमावहति। ---असावप्यात्मघाती केवलमेनसा संयुज्यते।**" (कादम्बरी/महाश्वेतावृत्तान्त/पृ.१११-११२/चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी)।

अनुवाद- "यह जो अनुमरण (सतीमरण) है, वह अत्यन्त निष्फल है। यह अज्ञानियों के द्वारा अपनाया जानेवाला मार्ग है। --- विचार करके देखा जाय, तो यह प्राणपरित्याग स्वार्थ ही है, क्योंकि यह असह्यवेदना से छुटकारा पाने के लिए किया जाता है। जिसके लिए प्राण त्यागे जाते हैं, उसका इससे कोई लाभ नहीं होता। --- और आत्मघात करनेवाला भी केवल पाप से लिप्त होता है।"

किन्तु संन्यासमरण या सल्लेखनामरण न तो मृत्यु के अपरिहार्य कारण के अभाव में किया जाता है, न धर्ममय जीवनपद्धति का विनाश करनेवाले कारण के अभाव में, न ही जीवन के असह्य कष्टों से भीरुता के कारण। तथा सल्लेखनामरण से पापमय, अनैतिक जीवनपद्धति को ठुकराने और पापकर्मों के बन्धन से बचने का लाभ होता है। इस प्रकार सल्लेखनामरण और सतीमरण में परस्पर अत्यन्त वैषम्य है। अतः सल्लेखनामरण को सतीमरण के समान आत्मघात नहीं कहा जा सकता।

वास्तविक हत्याओं और आत्महत्याओं पर ध्यान दिया जाय

जैनधर्म का सल्लेखनाव्रत, जो आत्महत्या नहीं है, उसे आत्महत्या नाम देकर न्यायालय द्वारा अवैध घोषित कराने का प्रयत्न करनेवाले महाशय से मेरा अनुरोध है कि वे एक अनावश्यक, धर्मविरोधी, लोकहितविरोधी, धर्मनिरपेक्षताविरोधी एवं लोकतंत्रविरोधी कृत्य में अपनी शक्ति का अपव्यय करने की बजाय प्रतिदिन हजारों की संख्या में हो रही कानून-सम्मत वास्तविक हत्याओं और आत्महत्याओं को अवैध घोषित कराने का अत्यावश्यक पुण्यकार्य सम्पन्न करें।

सन् १९७१ तक भारत में गर्भपात करना व कराना कानूनन अपराध माना जाता था, किन्तु वर्ष १९७१ में भारत सरकार ने The medical Termination of Pregnancy Act, 1971 बनाकर परिवार-नियोजन के लिए अपनाये गये गर्भनिरोधक साधनों के विफल रहने पर गर्भपात कराने को कानूनी मान्यता प्रदान कर दी, जिससे प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में भ्रूणहत्याएँ की जाने लगीं। सम्पूर्ण भारत में लगभग ५१ लाख ४७ हजार गर्भपात प्रतिवर्ष हो रहे हैं और इस संख्या में प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही है। (देखिए , श्री गोपीनाथ अग्रवाल द्वारा लिखित लघुपुस्तिका '**गर्भपात : उचित या अनुचित : फैसला आपका**'/ पृष्ठ १७-१८/ प्रकाशक-प्राच्य श्रमणभारती, १२/ए , प्रेमपुरी, निकट जैन मंदिर, मुजफ्फरनगर- २५१००१/ई.सन् १९९८)।

सल्लेखना से तो वर्षभर में दो-चार ही मृत्युएँ होती हैं, किन्तु गर्भपात से प्रतिवर्ष ६०-७० लाख भ्रूणहत्याएँ हो रही हैं। सल्लेखनाधारी को तो मृत्यु से बचाया ही नहीं जा सकता, क्योंकि सल्लेखना तब ग्रहण की जाती है, जब उपसर्ग, रोग आदि के रूप में उपस्थित हुआ मृत्यु का कारण अपरिहार्य हो जाता है। अतः जिसे मरने से बचाया ही नहीं जा सकता, उसे बचाने की निरर्थक कोशिश करने की बजाय, जिन मानव-शिशुओं का जीवन अभी विकसित ही हो रहा है, जिनकी स्वाभाविक मृत्यु अभी वर्षों दूर है, उनकी कानून की सहमति से गर्भ में ही करायी जा रही हत्या को रोकना सर्वप्रथम आवश्यक है। सल्लेखना को अवैध घोषित कराने के लिए प्रयत्नशील बन्धु पहले विशाल स्तर पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होनेवाली इस जघन्य मानवहत्या को अवैध घोषित कराने के लिए कदम उठायें। क्या यह मानववध उनके मानवतावादी हृदय को तनिक भी उद्वेलित नहीं करता? मृत्यु के कगार पर पहुँचे हुओं की मौत को रोकने का असंभव कार्य करने के इच्छुक मित्र जीवन की ओर कदम बढ़ाते गर्भस्थ मानवों के नृशंस वध को रोकने का साहस दिखाएँ।

इसी प्रकार शरीर के नाजुक अंगों को सड़ा-गलाकर मनुष्य को मौत का ग्रास बना देनेवाले जिस मद्यपान को प्रतिबन्धित कराने के लिए गाँधी जी ने आन्दोलन किया था और उनकी इच्छा का आदर करते हुए सरकार ने उस पर प्रतिबन्ध लगाया भी था, उसे ही उसने राजस्व के लोभ में आकर बाद में हटा दिया और सम्पूर्ण देशवासियों को मद्यपान की खुली छूट देकर धीमी आत्महत्या की अनुमति दे दी। आये दिन सुनने में आता है कि जहरीली शराब पीकर सैकड़ों लोग मर गये । धूम्रपान भी प्राणघातक है। यह कैंसर का प्रमुख कारण है। सिगरेट के पैकिटों पर ऐसा सरकार लिखवाती भी है। इस पर भी प्रतिबन्ध न लगाकर सरकार ने देशवासियों को आत्महत्या की कानूनी मान्यता दे दी। यह सरकार द्वारा करायी जानेवाली और मद्यपान तथा धूम्रपान करनेवालों के द्वारा की जानेवाली आत्महत्या है। इसी तरह शासनव्यवस्था में व्याप्त भयंकर भ्रष्टाचार एवं गलत नीतियों के कारण आज तक लोग गरीबी से छुटकारा नहीं पा सके हैं और हरवर्ष सैकड़ों लोग भुखमरी, कुपोषण, ठंड और लू से पीड़ित होकर मर जाते हैं। यह तो सीधी हत्या है, आत्महत्या नहीं। और अब तो विदेशी आतंकवादियों के द्वारा देश में घुसकर जगह-जगह बमविस्फोट कर एक साथ हजारों नागरिकों को मौत के घाट उतारा जा रहा है। यह हत्या है या आत्महत्या? यदि यह हत्या है, तो इसका जिम्मेदार कौन है? विदेशी आतंकवादी या **टाडा** जैसे कानून को रद्द कर देनेवाली देश की सरकार? देश के नागरिकों की जान-माल की रक्षा का जिम्मेदार कौन है?

जो सल्लेखना आत्महत्या नहीं है, उसे आत्महत्या का नाम देकर झूठी आत्महत्या को रोकने की कवायद झूठा मानवतावाद है। जिन मित्र ने सल्लेखना को आत्महत्या कहकर उसे अवैध घोषित कराने के लिए राजस्थान उच्चन्यायालय में याचिका प्रस्तुत की है, उनसे प्रार्थना है कि वे यदि सच्चे मानवतावादी हैं, तो सर्वप्रथम उपर्युक्त वास्तविक हत्याओं और आत्महत्याओं को अवैध घोषित कराने का प्रयत्न करें।

रतनचन्द्र जैन

उद्दायन राजा

कच्छदेश में रोरव नाम का नगर था। वहाँ के राजा का नाम उद्दायन और रानी का नाम प्रभावती था।

एक समय प्रथम स्वर्ग की इन्द्र, सभा में बैठे देवताओं से कहने लगे कि राजा उद्दायन ग्लानि जीतने में बहुत पक्का है। उनमें से वासव नामक देव के मन में आया कि इस राजा की परीक्षा करें। वह साधु का वेष धारण कर अपने शरीर को घिनावना रोगी तथा दुर्गन्धित बना राजा के दरवाजे पर पहुँचा। भोजन का समय था। इसलिये राजा ने साधु को देखते ही कहा कि हे महाराज! अन्न जल शुद्ध है। खड़े रहो! खड़े रहो!

राजा उसे सच्चा मुनि जानकर अपने घर में ले गये और उँचे आसन पर बैठाया। राजा-रानी ने अष्ट द्रव्य से उनकी पूजा की और भक्तिसहित भोजन कराया। उस बनावटी मुनि को तो राजा की परीक्षा करनी थी, इसलिये उसने वहाँ ही वमन कर दिया। उसकी इतनी बदबू बढ़ी कि राजा के पास के नौकर चाकर भी उसे न सह सके और भाग गये। वहाँ राजा और रानी के सिवाय कोई नहीं बचा। मुनि ने दुबारा भी राजा और रानी के ऊपर ही वमन कर दिया। इतना होने पर भी राजा ने ग्लानि नहीं की।

वे पछतावा करने लगे कि हाय मुझ पापी से आहार देने में कुछ भूल हो गई अथवा मैंने पूर्व जन्म में कोई महापाप किया है, जिससे आहारदान में विघ्न आया। राजा पानी लाया और साधु का शरीर बड़ी सावधानी से धोने लगा। देव ने राजा की गहरी भक्ति और निर्विचिकित्सा देख अपना असली रूप प्रगट किया और नमस्कार कर राजा की बड़ाई करने लगा तथा सब सच्चा हाल कह सुनाया।

भावार्थ-राजा उद्दायन की देवताओं ने बड़ाई की। उनके समान हम सबको ग्लानि जीतना चाहिये। वमन व दूसरे दुर्गन्धित पदार्थ पुद्गल ही हैं, उनसे ग्लानि करना अज्ञान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानवता

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

सर्दी का समय है। रात की बात, लगभग बारह बज गये हैं। सब लोग अपने-अपने घरों में अपनी-अपनी व्यवस्था के अनुरूप सर्दी से बचने के प्रयत्न में हैं। खिड़कियाँ और दरवाजे सब बंद हैं। पलंग पर विशेष प्रकार की गर्म दरी बिछी है। उसके ऊपर भी गादी है, ओढ़ने के लिए रजाई है। पलंग के समीप अंगीठी भी रखी है। एक-एक क्षण आराम के साथ बीत रहा है।

इसी बीच कुछ ऐसे शब्द ऐसी आवाज सुनाई पड़ी, जो दुख-दर्द भरी थी। इस प्रकार दुखभरी आवाज सुनकर मन बेचैन हो गया। इधर-उधर उठकर देखते हैं, तो सर्दी भीतर घुसने का प्रयास कर रही है। वह सोचते हैं कि उठूँ कि नहीं उठूँ। कुछ क्षण बीतने के उपरांत वह करुण आवाज पुन: कानों में आ जाती है। उठने की हिम्मत नहीं है, सर्दी बढ़ती जा रही है, पर देखना तो आवश्यक लग रहा है।

थोड़ी देर बाद साहस करके उठकर देखते हैं, तो बाहर कुत्ते के तीन चार छोटे-छोटे बच्चे सर्दी के मारे सिकुड़ गये थे। आवाज इन्हीं के रोने की थी। उन्हें देखकर रहा नहीं गया और वे अपने हाथों में उन कुत्ते के बच्चों को उठा लेते हैं और जिस गादी पर वे शयन कर रहे थे, उसी पर लिटा देते हैं। धीरे-धीरे अपने हाथों से उन्हें सहलाते हैं। सहलाने से वे कुत्ते के बच्चे सुख-शांति का अनुभव करने लगे। वेदना का अभाव सा होने लगा। उन बच्चों को ऐसा लगा जैसे कोई माँ उन्हें सहला रही हो।

सहलाते-सहलाते उनकी आँखे डब-डबाने लगीं। आँसू बहने लगे। वे सोचने लगे कि इन बच्चों के ऊपर मैं और क्या उपकार कर सकता हूँ। इनका जीवन अत्यंत परतंत्र है। प्रकृति का कितना भी प्रकोप हो, पर उसका कोई प्रतिकार ये नहीं कर सकते। ऐसा दयनीय जीवन ये प्राणी जी रहे हैं। हमारे जीवन में एक क्षण के लिए भी प्रतिकूल अवस्था आ जाए, तो हम क्या करते हैं। सारी शक्ति लगा कर उसका प्रतिकार करते हैं। संसार में ऐसे कई प्राणी होंगे, जो प्रतिकार की शक्ति के अभाव में यातनापूर्वक जीते हैं। कोई-कोई तो मनुष्य होकर भी पीड़ा और यातना सहन करते हैं। उन्होंने इसी समय से संकल्प ले लिया कि "अब मैं ऐश-आराम की जिन्दगी नहीं जिऊँगा। ऐश-आराम की जिंदगी विकास के लिए कारण नहीं बल्कि विनाश के लिए कारण है। या कहो ज्ञान का विकास रोकने में कारण हैं। मैं ज्ञानी बनना चाहता हूँ। मैं आत्म-ज्ञान की खोज करुँगा। सबको सुखी बनाने का उपाय खोजूँगा।" उन कुत्ते के बच्चें की पीड़ा को उन्होंने अपने जीवन के निर्माण का माध्यम बना लिया। जीवन के विकास के लिए ऐसा ही कोई न कोई निमित्त आवश्यक होता है। यह कथा गाँधी जी के जीवन की है। गादी पर सुलाने वाले और कुत्ते के बच्चों को सहलाने वाले वे गाँधी जी ही थे।

इस घटना से प्रभावित होकर उन्होंने नियम ले लिया कि सभी के हित के लिए अपना जीवन समर्पित करुँगा। जिस प्रकार मैं इस संसार में दुखित हूँ, उसी प्रकार दूसरे जीव भी दुखित हैं। मैं अकेला ही सुखी बनूँ यह बात ठीक नहीं है। में अकेला सुखी नहीं बनना चाहता, मेरे साथ जितने और प्राणी हैं सभी को सुखी बनाना चाहता हूँ। जो कुछ मेरे लिए है वह सबके लिए होना चाहिए। दूसरों के सुख में ही मेरा भी सुख निहित है। उन्होंने अपनी आवश्यकताएँ सीमित कर लीं। एकत्रित भोग्य प्रदार्थों की सीमा बाँध ली।

एक दिन की बात। वे घूमने जा रहे थे। तालाब के किनारे उन्होंने देखा कि एक बुढ़िया अपनी धोती धो रही थी। देखते ही उनकी आँखों में आँसू आ गये। आधी धोती बुढ़िया ने पहन रखी थी और आधी धोती धो रही थी। आपने कभी सोचा? कितने हैं आपके पास कपड़े? एक बार में एक ही जोड़ी पहनी जाती है, यह बात सभी जानते हैं, लेकिन एडवांस में जोड़कर कितने रखे हैं? बोलो, चुप क्यों?

आपकी जिन पेटियों में सैकड़ों कपड़े बंद पड़े हैं, उन पेटियों में घुस-घुसकर चूहे कपड़े काट रहे होंगे, पर फिर भी आपके दिमाग में यह चूहा काटता रहता है कि उस दिन बाजार में जो बढ़िया कपड़ा देखा था, वह हमारे पास होता। जो पेटी मे बंद हैं उनकी ओर ध्यान नही हैं, जो बाजार में आया है उसे खरीदने की बेचैनी है। सारे काम छोड़कर उसी की पूर्ति का प्रयत्न है। यही तो अपव्यय है। यही दुख का कारण है। गाँधी जी ने उस बुढ़िया की हालत देखकर सोचा कि अरे! इसके पास तो ठीक से पहनने के लिए भी नही है, ओढ़ने की बात तो बहुत दूर है। कितना अभावग्रस्त जीवन है इसका, लेकिन फिर भी इसने किसी से जाकर अपना दुख नहीं कहा। इतने में ही काम चला रही है। जब से गाँधी जी ने जनता के दुख भरे जीवन को देखा, तब से उन्होंने सादा जीवन बिताना प्रारम्भ कर दिया। छोटी सी धोती पहनते थे, जो घुटने तक आती थी। आप जरा अपनी ओर देखें, आपके जीवन में कितना व्यर्थ खर्च हो रहा है। जो किसी और के काम आ सकता था, वह व्यर्थ ही नष्ट हो रहा हैं।

आप भारत के नागरिक हैं। गाँधी जी भारत के नेता माने जाते थे। उनका जीवन कितना आदर्श था। उन्हें दूसरे के दुख का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुभव था। उनके पास वास्तविक ज्ञान था। ज्ञान का अर्थ है देखने की आँखें। ऐसी आँखें उनके पास थीं जिनमें करुणा का जल छलकता रहता था। धर्म यही है कि दीनदुखी जीवों को देखकर आँखों में करुणा का जल छलक आये, अन्यथा छिद्र तो नारियल में भी हुआ करते हैं। दयाहीन आँखे नारियल के छिद्र के समान हैं। जिस ज्ञान के माध्यम से प्राणीमात्र के प्रति संवेदना जागृत नहीं होती, उस ज्ञान का कोई मूल्य नहीं और वे आँखे किसी काम की नहीं, जिनमें देखने-जानने के बाद भी संवेदना की दो तीन बूँदे नहीं छलकतीं।

एक अंधे व्यक्ति को हमने देखा था। दूसरे के दुख की बात सुनकर उसकी आँखों में पानी आ रहा था। मुझे लगा व आँखे बहुत अच्छी हैं, जिनसे भले ही दिखायी नहीं देता, लेकिन करुणा का जल तो छलकता रहता है। गाँधी जी के पास पर्याप्त ज्ञान था, विलायत जाकर उन्होंने अध्ययन किया और बैरिस्टर बने। बैरिस्टर बहुत कम लोग बन पाते हैं। यह उपाधि भी भारत में नहीं विलायत से मिलती है। इतना सब होने पर भी उनके भीतर धर्म था, संवेदना थी। वे दयाधर्म को जीवन का प्रमुख अंग मानते थे। या कहो कि जीवन ही मानते थे। उनके जीवन की ऐसी कई घटनाएँ हैं, जो हमें दया से अभिभूत कर देती हैं।

"दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान तुलसी दया न छाँड़िये, जब लौं घट में प्रान।" यह जो समय हमें मिला है, जो कुछ उपलब्धियाँ हुई हैं, वे पूरी की पूरी उपलब्धियाँ दयाधर्म पालने के लिए ही हैं। ज्ञान के माध्यम से हमें क्या करना चाहिये, तो संतों ने लिखा है कि ज्ञान का उपयोग उन स्थानों को जानने में करना चाहिये, जिन स्थानों में सूक्ष्म जीव रह सकते है, ताकि उनको बचाया जा सके। जीवों को जानने के उपरांत यदि दया नहीं आती, तो उस ज्ञान का कोई उपयोग नहीं। वह ज्ञानी नहीं माना जा सकता, जिसके हृदय में उदारता नहीं है, जिसके जीवन में अनुकम्पा नहीं है। जिसका अपना शरीर तो सर्दी में कँप जाता है, किंतु प्राणियों की पीड़ा को देखकर नहीं कँपता, वह लौकिक दृष्टि से भले ही कितना भी ज्ञानी क्यों न हो, परमार्थदृष्टि से सच्चा ज्ञानी वह नहीं है।

आज पंचेन्द्रिय जीव, जिनमें तिर्यंच पशुपक्षियों की बात तो बहुत दूर रही, ऐसे मुनष्य भी हैं, जिन्हें जीने योग्य आवश्यक सामग्री भी उपलब्ध नहीं हो पाती। समय पर भोजन नही मिलता, रहने को मकान नहीं है, शिक्षा के समूचे साधन नहीं हैं। सारा जीवन अभाव में व्यतीत होता जाता है। कुछ मिलता भी है, तो उस समय जब जीवन ढलता हुआ नजर आने लगता है। जैसे शाम तक यदि कुछ राशन मिल भी जाए तो सूरज डूबने को है और रात्रि भोजन का त्याग है। अब खाने की सामग्री होते हुए भी खाने का मन नहीं है। आप सोचिये रात्रि भोजन का त्याग करने के उपरांत भी आप रात्रि में कितनी चीजें खाने योग्य जुटा लेते हैं। संसार में ऐसे भी लोग हैं, जो दिन में भी एक बार भरपेट भोजन नहीं पा पाते। थोड़ा उनके बारे भी में सोचिये। उनकी ओर भी तो थोड़ी दृष्टि कीजिये। कितने लोग यहाँ हैं, जो इस प्रकार का कार्य करते हैं, दूसरे के दुख में कमी लाने का प्रयास करते हैं।

आज इस भारत में सैकड़ों बूचड़खानों को निर्माण हो रहा है। पशुपक्षी मारे जा रहे हैं, आप सब सुन रहे हैं, देख रहे हैं फिर भी उन राम-रहीम और भगवान महावीर के समय में जिस भारत भूमि पर दया बरसती थी, सभी प्राणियों के लिए अभय था, उसी भारतभूमि पर आज अहिंसा खोजे-खोजे नहीं मिलती।

आज बड़ी-बड़ी मशीनों के सामने रखकर एक-एक दिन में दस-दस लाख निरपराध पशु काटे जा रहे हैं। सर्वत्र बड़े-बड़े नगरों में हिंसा का ताण्डव नृत्य दिखाई दे रहा है। आपको कुछ करने की, यहाँ तक कि यह सब देखने तक की फुरसत नहीं हैं। क्या आज इस दुनियाँ में ऐस कोई दयालु वैज्ञानिक नहीं है, जो जाकर के इन निरपराध पशुओं की करुण पुकार को सुन सके, उनके पीड़ित जीवन को समझ कर उनकी आत्मा की आवाज पहचान कर हिंसा के बढ़ते हुए आधुनिक साधनों पर रोक लगा सके?

आज पशुओं की हत्या करके, उनकी चमड़ी माँस आदि सब कुछ अलग करके डिब्बों में बंद करके निर्यात किया जाता है। सरकार सहयोग करती है और आप भी पैसों के लोभ में ऐसे अशोभनीय कार्यों में सहयोगी बनते हैं। आप केवल नोट ही देख रहे हैं फॉरेन करेंसी। लेकिन आगे जाकर जब इसका फल मिलेगा तब मालूम पड़ेगा। इस दुष्कार्य में जो भी व्यक्ति समर्थक हैं, उनके लिए भी नियम से इस हिंसा जनित पाप के फल का यथायोग्य हिस्सा भोगना पड़ेगा। समय किसी को माफ नहीं करता।

छहढाला का पाठ आप रोज करते हैं। 'सुखी रहें सब जीव जगत के'- यह मेरी भावना भी रोज-रोज भायी जाती है, लेकिन निरंतर होनेवाली हिंसा को रोकने का उपाय कोई नहीं करता। चालीस-पचास साल भी नहीं हुए गाँधी जी का अवसान हुए और यह स्थिति उन्हीं के देश में आ गयी। जिस भारतभूमि पर धर्मायतनों का निर्माण होता था, उसी भारतभूमि पर आज धड़ाधड़ सैकड़ों हिंसायतनों का निर्माण हो रहा है। इसमें राष्ट्र के साथ-साथ व्यक्ति का भी दोष है। क्योंकि देश में प्रजातंत्रात्मक शासन है। प्रजा ही राजा है। आपने ही चुनाव के माध्यम से वोट देकर शासक नियुक्त किया है। यदि आपके भीतर निरंतर होने वाली उस हिंसा को देखकर करुणा जागृत हो जाए, तो शासक कुछ नहीं कर सकते। आपको जागृति लानी चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सौंदर्य-प्रसाधन-सामग्री भी आप मुँह माँगे दाम देकर खरीदते हैं, जीवन का आवश्यक कार्य समझकर उसका उपयोग करते हैं। क्या जानबूझकर आप उसमें होनेवाली अंधाधुंध हिंसा का समर्थन नहीं कर रहे हैं? आप रात्रि-भोजन नहीं करते, अभक्ष्य पदार्थ नहीं खाते, पानी छानकर पीते हैं, नियमित स्वाध्याय करते हैं, पर हिंसा के साधनों का उपयोग करके हिंसा का समर्थन करते हैं। इन नश्वर शरीर की सुंदरता बढ़ाने के लिए आज कितने जीवों को मौत के घाट उतारा जा रहा है! दूध देनेवाली भोली-भाली गायें, भैंसे दिनदहाड़े मारी जा रही हैं। खरगोश, चूहे, मेंढक और बेचारे बंदरों की हत्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और आप चुप हैं। सब वासना की पूर्ति के लिए हो रहा है। पशुओं को सहारा देना, उनका पालन पोषण करना तो दूर रहा, उनके जीवन को नष्ट होते देखकर भी आप चुप हैं। कहाँ गयी आपकी दया, कहाँ गया आपका लम्बा चौड़ा ज्ञान-विज्ञान, कहाँ गया आपका मानव धर्म?

आज मुर्गी पालन केंद्र के नाम पर मुर्गियों को जो यातना दी जा रही है, वह आपसे छिपी नहीं है। मछलियों का उत्पादन उनकी संख्या बढ़ाने के लिए नहीं, उन्हें मारने के लिए हो रहा है। उस सबकी शिक्षा दी जा रही है, लेकिन दया की उत्पत्ति, अनुकम्पा की उत्पत्ति, और आत्म-शान्ति के लिए कोई ऐसी यूनिवर्सिटी, कोई कालेज या स्कूल कहीं देखने में नहीं आ रहा। मुझे यह देखकर बड़ा दुख होता है कि जहाँ पर आप लोगों ने धर्म के संस्कारों के लिए विद्यालय और गुरुकुल खोले थे, वहाँ भी धर्म का नामों निशान नहीं है। सारे लौकिक विषय वहाँ पढ़ाये जाते हैं, लेकिन जीव दया पालन जैसा सरल और हितकर विषय रंचमात्र भी नहीं है।

आज नागरिकशास्त्र की आवश्यकता है। ऐसा नागरिक-शास्त्र जिसमें सिखाया जाए कि कैसे श्रेष्ठ नागरिक बनें, कैसे समाज का हित करें, कैसे दया का पालन करें! उस नागरिक शास्त्र के माध्यम से हम सही जीवन जीना सीखें और दूसरे प्राणियों को अपना सहयोग दें। पशुओं की रक्षा करें। उनका सहयोग भी अपने जीवन में लें।

जहाँ पहले पशुओं की सहायता से खेतों में हल चलाया जाता था, चरस द्वारा सींचा जाता था, वहाँ अब ट्रेक्टर और पंप आ गया। जमीन का अनावश्यक दोहन होने लगा और कुएँ खाली हो गये। चरस चलने से पानी धीरे-धीरे निकलता था, जमीन में भीतर धीरे-धीरे घुसता चला जाता था, जमीन की उपजाऊ शक्ति बनी रहती थी, पानी का अपव्यय नहीं होता था। इस सारे कार्य में पशुओं का सहयोग मिलता था। उनका पालन भी होता था। मशीनों के अत्यधिक प्रयोग से यह सब नष्ट हो गया। लाभ के स्थान पर हानि हुई और हिंसा भी बढ़ गयी। आप सही तरीके से सोचें, तो ज्ञात होगा कि सभी क्षेत्रों में, सामाजिक क्षेत्र में, आर्थिक क्षेत्र में, शैक्षणिक क्षेत्र में ऐसा कोई भी कार्य नहीं हुआ, जिसकी तुलना हम पूर्वपरम्परा से कर सकें और उसे अधिक लाभकारी कह सकें।

आप लोग चुपचाप सब बातें सुन रहे हैं। जीवन में परिवर्तन लाने का भी प्रयास करिये। अपनी संतान को इस प्रकार की शिक्षा देने में आप अपने-आप को कृतकृत्य मानते हैं कि हमारा लड़का एम.बी.बी.एस. हो जाये, इंजीनियर या ऑफीसर हो जाये। ठीक है **पर उसके भीतर धर्म के प्रति आस्था, संस्कृति के प्रति आदर और अच्छे संस्कार आयें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये।** जो कार्य आस्था के बिना और विवेक के बिना किया जाता है, वह बहुत कम दिन चलता है। भीतर उस कार्य के प्रति कोई जगह न हो, तो खोखलापन अल्प समय तक ही टिकता है। उच्च शिक्षा के साथ मानवीयता की शिक्षा भी होनी चाहिये।

नवनीत और छाँछ ये दो तत्त्व हैं। जिसमें सारभूत तत्त्व नवनीत है, पर आज उसे छोड़कर हमारी दृष्टि मात्र छाँछ की ओर जा रही है। अपनी मूल संस्कृति को छोड़कर भारत, पाश्चात्य संस्कृति की ओर जा रहा है। यह नवनीत छोड़कर छाँछ की ओर जाना है। बंधुओ, ज्ञान धर्म के लिए है मानवता के लिए है। मानव-धर्म ही आत्मा का उन्नति की ओर ले जाने वाला है। यदि ज्ञान दयाधर्म से संबंधित होकर दयामय हो जाता है, तो वह ज्ञान हमारे लिये हितकर सिद्ध होगा। वे आँखें भी हमारे लिए बहुत प्रिय मानी जायेंगी, जिनमें करुणा, दया अनुकम्पा के दर्शन होते हों। अन्यथा इनके अभाव में मानव जीवन नीरस प्रतीत होता है।

आज सहनशीलता , त्याग, धर्मवात्सल्य और सह अस्तित्व की भावना दिनोंदिन कम होती जा रही है। प्रगति के नाम पर दिनोंदिन हिंसा बढ़ती जा रही है। भौतिकता से ऊब कर एक दिन बड़े-बड़े वैज्ञानिकों को भी धर्म की ओर मुड़ने को मजबूर होना पड़ेगा, हो भी रहे हैं। कैसे जियें! कैसा व्यवहार करें! ताकि जीवन में सुख शान्ति आये, इन प्रश्नों का समाधान आज विज्ञान के पास नहीं। अनावश्यक भौतिक सामग्री के उत्पादन से समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। धन का भी अपव्यय हो रहा है। शक्ति क्षीण हो रही है। हमें इस सबके प्रति सचेत होना चाहिए।

हम जब बहुत छोटे थे, उस समय की बात है। रसोई परोसने वाले को हम कहते थे कि रसोई दो बार परोसने की अपेक्षा एक बार ही सब परोस दो। तो वह कह देते थे कि हम तीन बार परोसे देंगे, लेकिन तुम ठीक से खाओ तो। एक बार में सब परोसेंगे तो तुम आधी खाओगे और आधी छोड़ दोगे। इसी प्रकार आज हर क्षेत्र में स्थिति हो गयी है। बहुत प्रकार का उत्पादन होने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से अपव्यय हो रहा है, सभी उसका सदुपयोग नहीं कर पा रहे हैं।

एक समय वह भी था, जब धनसंपत्ति का संग्रह होता भी था, तो एक दूसरे के उपकार के लिय होता था। धन का उपयोग धार्मिक अनुष्ठानों मे होता था। जो धन दूसरों का हित करनेवाला था वही धन आज परस्पर द्वेष और कलह का कारण बना है। 'मैं किसी को क्यां दूँ' इस प्रकार की स्वार्थ भावना मन में आ गयी है। इसी लिए धन का उपयोग कैसे करें, कहाँ करें, इस बात का विवेक नहीं रहा। अर्जन करने की बुद्धिमानी तो है, लेकिन सही-सही उपयोग करने का विवेक नहीं है। जैनधर्म का कहना है कि उतना ही उत्पादन करो, जितना आवश्यक है। अनावश्यक उत्पादन में समय और शक्ति मत गँवाओ। धन का संग्रह करने की अपेक्षा जहाँ पर आवश्यक है, वहाँ पर लगाओ। इसी में सभी का हित निहित है।

बहुत दिन पहले की बात है। राज्यव्यवस्था और राज्य-शासन कैसा हो, इस बारे में एक पाठ पढ़ा था। उस राजा के राज्य में धीरे-धीरे प्रजा की स्थिति दयनीय हो गयी। राजा के पास बार-बार शिकायतें आने लगीं। राजा ने सारी बात मालूम करके कमियों का दूर करने के लिए सख्त आदेश दे दिया। कहा दिया कि हमारे राज्य में कोई भी व्यक्ति भूखा नहीं सो सकता। यदि भूखा सोयेगा तो दण्ड दिया जाएगा। कोई भूखा हो, तो अपनी बात राजा तक पहुँचाने के लिए एक घंटा भी लगवा दिया।

एक दो दिन तक कुछ नहीं हुआ। तीसरे दिन घंटा बजने लगा। घंटा बजते ही जो सिपाही वहाँ तैनात था उसने देखा कि बात क्या है? घंटा बजानेवाला वहाँ कोई व्यक्ति नहीं है, एक घोड़ा अवश्य था। किसी ने घंटे के ऊपर थोड़ा सा घास अटका दिया था, उसको खाने के लिए वह घोड़ा सिर उठाता था, तो घंटा बजने लगता था। राजा तक खबर पहुँची। राजा ने सोचा कि जरूर यह घोड़ा भूखा है। उसके मालिक को बुलाया। पूछा गया कि बोलो- यह कितने दिन से भूखा था। 'अन्नदाता, मैंने इसे जानबूझकर भूखा तो नहीं रखा'- उस घोड़े के मालिक ने डरते-डरते कह दिया। राजा ने पुन: प्रश्न किया कि फिर यह भूखा क्यों है? तब वह कहने लगा कि अन्नदाता! इस घोड़े के माध्यम से मैं जो कुछ भी कमाता हूँ, उसमें कमी आ गयी है। पहले लोग जो किराया देते थे, अब उसमें कमी करने लगे हैं। मेरा तो एक बार भोजन से काम चल जाता है, पर इसके लिए कहाँ से पूरा पड़ेगा। मैंने सोचा कि अपनी बात यह स्वयं आपसे कहे, इसलिए इसके माध्यम से घंटा बजवा दिया। अब आप ही न्याय करें।

राजा हँसने लगा। वह सारी बात समझ गया कि कमी कहाँ है? मनुष्य-मनुष्य के बीच जो आदान-प्रदान का व्यवहार है, उसमें कमी आ गयी है। उसी दिन राजा ने आज्ञा दी कि जो जितना काम करे, उसे उसके अनुरूप वेतन मिलना चाहिए, फिर चाहे वह मनुष्य हो या पशु भी क्यों न हो। सभी को समान अधिकार है जीने का। यह कहलाती है शासन व्यवस्था! यही राजा का धर्म है। आज इस धर्म के पालन में कमी आ जाने से सभी दुख का अनुभव कर रहे हैं। हमें अधर्म से बचकर मानवधर्म के लिए तत्पर रहना चाहिये।

गाँधी जी के माध्यम से भारत को स्वतंत्रता मिली। उनका उद्देश्य मात्र भारत को स्वतंत्रता दिलाने का नहीं था। व्यक्ति-व्यक्ति स्वतंत्रता का अनुभव कर सके, प्राणीमात्र स्वतंत्र हो और सुख शान्ति प्राप्त करे यह उनकी भावना थी। सब संतों का, धर्मात्मा पुरुषों का उद्देश्य यही होता है कि जगत् के सभी जीव सुख शान्ति का अनुभव करें। एक साथ सभी जीवों को अभय देने की भावना हर धर्मात्मा के अंदर होती है, होनी भी चाहिए। इस बात का प्रयास सभी को करना चाहिये।

प्राणी मात्र के भीतर जानने देखने की क्षमता है। पशुपक्षी भी हमारी तरह जानते देखते हैं। किसी-किसी क्षेत्र में उनका इन्द्रियज्ञान हमसे भी आगे का है। यहाँ आप बैठे सुन रहे हैं, लेकिन आप ही मात्र श्रोता हैं ऐसा नहीं है। पेड़ के ऊपर बैठी चिड़िया भी सुन सकती है। कौआ भी सुन सकता है, बंदर भी सुन सकता है और ये सब प्राणी भी अपने जीवन को धर्ममय बना सकते हैं। बनाते भी हैं। पुराणों के अंदर ऐसी कथाओं की भरमार है। इन कथाओं को पढ़कर ऐसा लगता है कि हम लोगों को तो अल्प समय में बहुत उन्नति कर लेनी चाहिए।

आज से आप लोग यह संकल्प कर लें कि नये कपड़े या अन्य कोई उपयोगी सामग्री खरीदने से पहले पुराने कपड़े और पुरानी सामग्री दयापूर्वक, जिसके पास नहीं है, उसे दे दें। परस्पर एक दूसरे का उपकार करने का भाव बनायें।

इस युग में गाँधी जी ने अपने जीवन को '**सिम्पल लिविंग एण्ड हाई थिंकिंग**', 'सादा जीवन उच्च विचार' के माध्यम से उन्नत बनाया था। वे सदा सादगी से रहते थे। भौतिकशक्ति भले ही कम थी, लेकिन आत्मिक शक्ति, धर्म का सम्बल अधिक था। उनके अनुरूप भी यदि आप अपना जीवन बनाने के लिए संकल्प कर लें, तो बहुत सारी समस्याएँ समाप्त हो जायेंगी। जितनी सामग्री आवश्यक है, उतनी ही रखें, उससे अधिक न रखें, इस प्रकार परिमाण कर लेने से आप अपव्यय से बचेंगे, साथ ही सामग्री का संचय नहीं होने से सामग्री का वितरण सभी के लिए सही ढंग से होगा। सभी का जीवन सुखद होगा। देश में मानवता कायम रहेगी और देश की संस्कृति की रक्षा होगी, आत्म कल्याण होगा।

'समग्र' चतुर्थ खण्ड से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन का अंत करने की स्वेच्छा सर्वोपरि

श्री पानाचन्द्र जैन, भूतपूर्व न्यायाधीश,
राजस्थान उच्च न्यायालय

संथारा जैन मुनि, साधु-साध्वी तथा साधुप्रवृत्ति के व्यक्तियों के लिए महाप्रस्थान के पथ पर जाने की एक प्रक्रिया के रूप में मान्य रहा है।

सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक निर्णय में घोषित किया कि जीने का अधिकार मानव का सबसे मूल्यवान् अधिकार है। जब हम जीने के अधिकार की बात करते हैं तो इस बात पर भी विचार कर लेना चाहिए कि मृत्यु के अधिकार की बात कहाँ तक उचित है ! क्या जीवन का अंत स्वेच्छा से किया जा सकता है ? मृत्यु का अधिकार भी व्यक्ति का मौलिक अधिकार है ? अपने एक निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने जीवन के अंत को मूलभूत अधिकार मानने से इनकार कर दिया और यह कहा कि जीवन का अधिकार प्राकृतिक अधिकार है, किंतु आत्महत्या अप्राकृतिक तरीका है। इसलिए जीवन के अधिकार के साथ मृत्यु के अधिकार को नहीं माना जा सकता। इस निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात को भी स्वीकार किया कि मृत्यु के अधिकार की बात वहाँ पर लागू की जा सकती है जहाँ प्राकृतिक रूप से मृत्यु का प्रोसेस प्रारंभ हो चुका हो व जहाँ पर मृत्यु होना निश्चयात्मक रूप से संभव हो। यदि कोई व्यक्ति टर्मिनली इल है अर्थात उसके जीवन का अंत अवश्यंभावी है या ऐसे व्यक्ति की ब्रेनडेथ हो चुकी हो, तो उसके लाइफ सपोर्ट को हटाया जा सकता है।

कई देशों में इच्छा मृत्यु का अधिकार कानूनी अधिकार मान लिया गया है। हॉलैंड विश्व का पहला देश है जहाँ व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त है। आस्ट्रेलिया व कुछ अन्य देशों में भी इस प्रकार के कानून हैं। भारत धर्मनिरपेक्ष राज्य है। जो व्यक्ति हिंदूधर्म में विश्वास रखता है, उसे जीवन में चार उद्देश्यों की पूर्ति करनी होती है : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। जब अर्थ की प्राप्ति हो जाती है, तो धर्म सामने आता है और धर्म कहता है कि क्यों शरीर के बंधन से जकड़ा हुआ है। मृत्यु मात्र शरीर को बदलने का ही तो एक मार्ग है। धर्मशास्त्रों में उल्लेख है कि हमारे देवी-देवताओं ने अपना जीवन मृत्यु को अर्पित किया था। भगवान् राम ने जल समाधि ली थी, अपने ही समय में विनोबा भावे ने अन्न-जल त्यागकर मोक्ष प्राप्त किया था। अनन्त काल से जैन मुनि संथारा कर अपने प्राणों का विसर्जन करते आ रहे हैं जो जैन धर्म की एक निरंतर व अबाध रूप से चली आ रही परंपरा है।

एफ. मेक्समूलर ने अपनी पुस्तक 'लॉज आफ मनु' में विस्तार से इस बात का उल्लेख किया है कि ऋषि-मुनियों के लिए अन्न-जल त्यागकर मुक्ति प्राप्त करना उनके जीवन की सबसे बड़ी साधना माना जाता रहा है। जैनधर्म में तो जैनमुनियों और साधु-साध्वी का संथारा से मृत्यु को अंगीकार करना एक पुण्य का काम माना जाता रहा है, जो महोत्सव के रूप में मनाया जाता है। मनु पर टीका करने वाले दो विद्वानों-गौवर्धना व कुलुका ने इस बात को स्वीकार किया है कि प्राचीन काल में आत्महत्या को भी कुछ परिस्थितियों में महाप्रस्थान की यात्रा बताया गया था।

यहाँ यह भी लिखना होगा कि वर्ष 1972 में लॉ कमीशन ने माना था कि भारतीय दंड संहिता की धारा 309 में आत्महत्या पर सजा का प्रावधान है, वह समाप्त कर दिया जाए। इस संबंध में एक बिल भी लाया गया था, पर वह कानून का भाग नहीं बन पाया। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 25 स्पष्ट करता है कि लोकव्यवस्था, सदाचार के अधीन रहते हुए देश के प्रत्येक नागरिक को अंत:करण की स्वतंत्रता का और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रसार करने का समान अधिकार होगा।

अनुच्छेद 29 और 30 की व्याख्या की जाए तो यह ज्ञात होगा कि जाति, भाषा व संस्कृति के आधार पर अल्पसंख्यकों को अपने धर्म और संस्कृति की रक्षा करने का अधिकार प्राप्त है। कुछ दिन पूर्व सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि जैन अल्पसंख्यक हैं और जैन धर्म हिंदू धर्म से विभक्त नहीं होकर बहुत पहले का धर्म है, वह आदि धर्म है। जैन धर्म इस प्रकार संस्कृति का ही प्रतीक है, यह एक निर्विवाद सत्य है कि जैनों की स्वीय विधि (पर्सनल लॉ) है, उनके अपने कस्टम (रूढ़ि) हैं।

यह भी सत्य है कि जैनों ने अपनी स्वीय विधि को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्यागा नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने 'बिजॉय इम्मेनुअल स्टेट ऑफ केरल' में प्रतिपादित किया है कि धर्म केवल धार्मिक आस्था, धार्मिक प्रैक्टिस तक ही विस्तृत नहीं है, पूजा-विधि, संस्कार तथा खान-पान आदि भी संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। धर्म संस्कृति का ही प्रतीक है। जैन धर्म में संथारा जैन मुनि, साधु-साध्वी तथा साधुप्रवृत्ति के व्यक्तियों के लिए जीवन समाप्त करने की अर्थात् मोक्षगामी बनाने की, महाप्रस्थान के पथ पर जाने की प्रक्रिया के रूप में मान्य रहा है। इस प्रकार संथारा आत्महत्या नहीं है। आत्महत्या एक इम्पल्सिव प्रक्रिया है, जबकि संथारा एक उत्सव के रूप में मनाया जाता है। यह किसी भी प्रकार लोकव्यवस्था के विरुद्ध नहीं है।

'दैनिक भास्कर' भोपाल, 30 सितम्बर 2006 से साभार

समाज से अपील

उदयपुर (राज.) में परम पूज्य मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज, पू.क्षु. श्री गम्भीर सागर जी महाराज एवं पू.क्षु. श्री धैर्यसागर जी महाराज के सान्निध्य एवं अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि-परिषद् एवं अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के २५० विद्वानों तथा समाज के मध्य आयोजित संयुक्त अधिवेशन (दि. ४ अक्टूबर २००६) में दिगम्बर जैनधर्म संस्कृति के संरक्षणार्थ सर्वसम्मति से लिये गये निर्णयों पर आधारित समाज से अपील-

१. शासन देवी-देवताओं की पूजा-विधान-अनुष्ठान आदि आगम सम्मत नहीं है, अतः तीर्थंकरों के समान उनका पूजन-विधान अनुष्ठान नहीं करना चाहिए।

२. वर्तमान में कतिपय साधु-साध्वी-संघों में बढ़ता हुआ शिथिलाचार एवं परिग्रह के अधिक संचय की प्रवृत्ति चिन्ताजनक है। साधुओं के द्वारा मोबाइल रखना एवं बिना पीछी/कमण्डलु के उनके चित्रों का प्रकाशन उचित नहीं है। यह साधुवर्ग का अवमूल्यन है, अतः समाज उक्त प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित न करे।

३. नवरात्रि का ऐतिहासिक एवं धार्मिक दृष्टि से जैनधर्म में कोई अस्तित्व व महत्त्व नहीं है, अतः इस अवसर पर किये जानेवाले विशेष अनुष्ठान आगम सम्मत नहीं हैं। अतः विद्वानों की कृत-कारित-अनुमोदना नहीं है। साधु वर्ग को भी चाहिए कि आगम में अस्तित्व न होने के कारण इन पूजा-अनुष्ठानों की प्रेरणा न दें, न सान्निध्य प्रदान करें।

४. आचार्य/मुनिसंघ एवं आर्यिकासंघ को एक ही वसतिका में नहीं रहना चाहिए।

५.दान की राशि किसी साधु या संघस्थ व्यक्ति को न देकर सीधे सम्बंधित संस्थाओं/तीर्थस्थानों को भेजी जाये, ताकि दानराशि का शीघ्रता से समुचित उपयोग हो सके।

६. जैनधर्म के समुचित ज्ञानप्रसार हेतु प्रत्येक ग्राम एवं नगर में जैन-पाठशालाएँ स्थापित की जायें तथा इनमें योग्य धार्मिक शिक्षकों की नियुक्ति की जाये।

७. जैनधर्म हिन्दूधर्म से सर्वथा पृथक् एवं मौलिक धर्म है, अतः जैनधर्म की मौलिक एवं स्वतंत्र सत्ता को कायम रखा जाये तथा इनके धार्मिक, शैक्षणिक संस्थाओं के अल्पसंख्यक स्वरूप को बनाये रखा जाये।

८. जैन कालेजों में जैन विद्या एवं प्राकृत विभग स्थापित किये जायें। इनमें जैन धर्मानुयायी प्राध्यापकों की नियुक्ति की जाये। जैन विद्यार्थियों को चाहिए कि वे इनमें प्रवेश लेकर जैन संस्कृति के संवर्धन-संरक्षण में सहभागी बनें।

९. जैनमंदिरों में समाज के मध्य सांध्य/रात्रिकालीन स्वाध्याय/वचनिका की परम्परा को पुनजीर्वित किया जाये, ताकि हमारी नवीन पीढ़ी को जैनधर्म के मूलभूत सिद्धान्तों का परिचय मिल सके तथा हमारी निर्दोष परम्पराओं के प्रति अनवरत आस्था बनी रहे।

१०. समाज में बढ़ती हुई मद्यपान की प्रवृत्ति अशोभनीय एवं अधार्मिक है अतः इस पर दृढ़ता से रोक लगायी जाये।

११. दिगम्बर जैन मंदिरों एवं अन्य संस्थाओं के शास्त्र-भण्डारों की समुचित सुरक्षा की जाये। इनमें कुदेव कुगुरु-पोषक धर्मविरोधी साहित्य नहीं रखा जाये। पूर्व प्रकाशित अनुपलब्ध ग्रन्थों के पुनः प्रकाशन की व्यवस्था तो अवश्य की जाये, परन्तु उनमें लेखकों/सम्पादकों/अनुवादकों के नाम पूर्ववत् प्रकाशित किये जायें।

निवेदक

डॉ. श्रेयांसकुमार जैन (अध्यक्ष)	डॉ. शीतलचन्द्र जैन (अध्यक्ष)
प्रा. अरुणकुमार जैन (महामंत्री)	डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन (मंत्री)
एवं समस्त पदाधिकारी/सदस्य	एवं समस्त पदाधिकारी/सदस्य
अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि-परिषद्	अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नए सिरे से छिड़ी पुरानी बहस

श्री महीपसिंह

महीप सिंह की राय में गुजरात का धर्मांतरणरोधी विधेयक विवाद उपजाने वाला है।

गुजरात के धर्मान्तरणरोधी विधेयक को लेकर अनेक प्रकार के विवाद छिड़ गए हैं। इस विधेयक के अनुसार धर्मांतरण की सीमा हिंदू, मुसलमान और ईसाइ वर्गों तक सीमित है। एक कैथोलिक यदि प्रोटेस्टैंट बन जाए या एक सुन्नी यदि शिया बन जाए तो धर्मांतरण कानून उस पर लागू नहीं होगा, क्योंकि कैथोलिक और प्रोटेस्टैंट इसाई धर्म के दो संप्रदाय है, जैसे कि सुन्नी और शिया इसलाम के ही भाग हैं। इस विधेयक में बौद्धों, जैनों और सिखों को हिंदू परिधि में स्वीकार किया गया है। यही विवाद का सबसे बड़ा कारण बनता जा रहा है। बौद्धों, जैनों तथा सिखों-इन तीनों विचारों के अगुआ अपने आप को हिंदू धर्म का पंथ मात्र न मानकर स्वतंत्र धर्म मानते हैं।

नरेन्द्र मोदी ने एक वक्तव्य में कहा है कि इस बात की प्रेरणा उन्हें डॉ. अंबेडकर से प्राप्त हुई। भारतीय संविधान की रचना करते समय उन्होंने बौद्धों, जैनों और सिखों को हिंदूपरिधि में ही स्वीकार किया था। संविधान के अनुच्छेद 25 में कहा गया है कि कृपाण धारण करना और लेकर चलना सिखधर्म के मानने का अंग समझा जाएगा तथा हिंदुओं के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि उसके अंतर्गत सिख, जैन या बौद्ध धर्म को मानने वाले व्यक्तियों के प्रति निर्देश है और हिंदुओं के प्रति निर्देश का अर्थ तद्नुसार लगाया जाएगा, लेकिन इस अनुच्छेद का वह अर्थ नहीं है, जो मोदी अथवा उनके जैसे लोग समझते हैं। **इसमें बौद्धों,जैनों अथवा सिखों को हिंदू धर्म का पंथ नहीं माना गया है।** भारत में जन्में इन धर्मों की अनेक सामाजिक मान्यताएँ और रीति-रिवाज एक जैसे हैं। इस देश में मुसलमानों, ईसाइयों, पारसियों की अपनी-अपनी सिविल संहिताएँ (पर्सनल लॉ) हैं। हिंदू कोड बिल के अनुसार हिंदुओं, बौद्धों, जैनों और सिखों की समान सिविल संहिता हैं। इसी प्रकार संयुक्त परिवार, उत्तराधिकारसंबंधी कानून भी इन सभी में समान हैं। हिंदूधर्म का मूल आधार वेद हैं। इसीलिए प्राचीन ग्रंथों में वैदिक धर्म की चर्चा है। मुसलमान आक्रमणकारियों और शासकों ने बौद्धों, जैनों, सिखों को हिंदुओं से अलग नहीं समझा। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदूधर्म को प्रतिष्ठित करने में स्वामी विवेकानंद का महत्त्व सबसे अधिक है। उन्होंने वैदाधारित सनातन धर्म को 'वेद प्रणीत हिंदू धर्म' कह कर पुकारा, किंतु इस देश में बौद्ध और जैन धर्मों को सदा ही अवैदिक धर्म स्वीकार किया गया। वैदिकों और बौद्धों के बीच तो प्रतिद्वंद्विता और विरोध भी रहा। **1932 में यरवदा जेल में गांधी जी के आमरण अनशन को समाप्त करने के लिए डॉ. अंबेडकर ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किए थे, जिसे 'पूना समझौता' कहा जाता है।** इसमें कहा गया था कि अब सवर्ण हिंदुओं की ओर से दलितों के प्रति किसी प्रकार का अन्याय नहीं होगा, किंतु भेदभाव दूर नहीं हुआ। डॉ. अंबेडकर ने निराश होकर यह घोषणा कर दी कि अब वे हिंदूधर्म छोड़ देंगे। उनकी इस घोषणा के बाद इसलाम और ईसाई धर्म के लोग उन्हें अपने धर्म में लाने का प्रयास करने लगे, किंतु ऐसा कोई भी कदम उठाने से पहले वे पूरी तरह सोचना समझना चाहते थे। वे भारत में ही जन्में किसी धर्म को स्वीकार करना चाहते थे, जो दलित समाज को समता के सभी अधिकार देकर मानवीय गरिमा प्रदान कर सके। 14 अक्टूबर 1956 को उन्होंने 5 लाख दलितों के साथ नागपुर में बौद्धधर्म की दीक्षा ली। धर्मांतर पर प्रतिबंध लगाने से पहले इस बात पर अवश्य विचार करना चाहिए कि आखिर लोग अपना धर्म छोड़कर दूसरे धर्म में क्यों जाते हैं? बहुत कम ऐसा होता है कि व्यक्ति किसी धर्म के तत्व-ज्ञान से प्रभावित होकर, अपनी आत्मिक उन्नति, मुक्ति या निर्वाण के लिए उस धर्म को स्वीकार करता हैं। संसार में वही धर्म निरन्तर विकास करते हैं, जो अपने अनुयायियों को ऐसी समाज-व्यवस्था देते हैं, जिसमें वे आध्यात्मिक प्राप्तियों के साथ ही भौतिक प्रगति भी कर सकें, उनमें बराबरी और बंधुत्व का भाव हो और सबसे बड़ी बात कि सेवा की अदम्य आकांक्षा हो। संसार में ईसाइयत प्रमुखत: अपनी सेवाभावना के कारण फैली। ईसाई मिशनरी उन भागों में गए, जहाँ कोई व्यवस्थित धर्म नहीं था अथवा किसी व्यवस्थित धर्म ने वहाँ कोई पहुँच नहीं की थी। अविकसित क्षेत्रों, जंगलों और बीहड़ों में निवास करते कबीले अपने आदिम विश्वासों को लेकर जी रहे थे। ज्ञान का प्रकाश उन तक नहीं पहुँच था। ईसाई प्रचारक वहाँ पहुँचे। उन्होंने वहाँ शिक्षा का प्रसार किया, उनकी बीमारियों का उपचार किया और उसी के साथ एक व्यवस्थित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म दिया। संसार के अनेक भागों में ये मिशनरी आज भी यह कर्य कर रहे हैं। इसलाम के पूर्व अरब प्रदेश के लोग अनेक छोटे-बड़े कबीलों में जी रहे थे। हजरत मुहम्मद ने उन्हें एक सूत्र में पिरोया, उन्हें कबीलाई मानसिकता से उठकार एक व्यवस्थित धर्म दिया, उन्हें एक धर्म-पुस्तक दी, एक आस्था दी, बराबरी और बंधुत्व पर आधारित समाज-व्यवस्था दी। अनेक देवी-देवताओं की पूजा से हटाकर एक ईश्वर (तौहीद) के साथ लोगों के जोड़ा।

बौद्धधर्म भी अपनी समतामूलक भावना के कारण संसार के अनेक भागों में लोकप्रिय हुआ। नारी-मुक्ति में भी बौद्धधर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि भय और प्रलोभन ने भी धर्मों के प्रसार में अपनी भूमिका निभाई हैं। हाल में ही पोप बेनेडिक्ट सोलहवें ने पंद्रहवीं सदी का एक हवाला देते कहा कि इसलाम के प्रचार में तलवार का सहारा लिया गया। पोप के इस कथन की इसलामी संसार में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। पोप ने अपने इस कथन के प्रति खेद भी व्यक्ति किया, किंतु यह काम तो कुछ ईसाइयों ने भी किया है। पंद्रहवीं सदी में पुर्तगाल से आए वास्कोडिगामा ने जब गोआ और आस-पास के क्षेत्र पर अपना आधिपत्य जमा लिया तो वहाँ के निवासियों को जबरन ईसाई बनाने में उसने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी।

हमारे देश में सदियों से दलितों के साथ जो अमानवीय व्यवहार होता रहा, उसने असंख्य लोगों को हिंदू धर्म छोड़ने के लिए प्रेरित किया। हिंदू मानसिकता में आज भी विशेष परिवर्तन नहीं आया है। हमारा संविधान अस्पृश्यता को अवैध घोषित करता है, किंतु देश के आंतरिक क्षेत्रों में आज भी अपने आपको ऊँची जाति का समझने वाले लोग दलितों के साथ अकल्पित भेद-भाव बरतते हैं। मुझे लगता है कि हमारी समस्या धर्म-परिवर्तन की नहीं है। समस्या मानसिकता में परिवर्तन की है। छुआछूत और भेदभाव-विरोधी कानून को अधिक कठोरता से लागू किए जाने की आवश्यकता है। किसी भी व्यक्ति के धर्म-परिवर्तन के अधिकार को छीना नहीं जा सकता। जिस व्यक्ति को अपने धर्म में बराबरी और सम्मान नहीं मिलेगा, वह उसमें क्यों रहेगा? **बौद्धों जैनों, सिखों के संदर्भ में इस विधेयक में जो बातें कही गई हैं, उन्होंने अनावश्यक विवाद खड़ा कर दिया है। ये सभी धर्म इस देश की मिट्टी से जन्में धर्म हैं और इनकी अपनी अलग पहचान है।** इस पहचान पर प्रश्न चिन्ह लगते ही उनके अनुयायियों में तीव्र प्रतिक्रिया होती है। इस समय यही हो रहा हैं। क्यों न इस देश में जन्में सभी धर्मों, पंथों, मतों का एक कामनवेल्थ बने और वे आपस में एक सार्थक संवाद करें?

(लेखक जाने-माने साहित्यकार हैं)

'दैनिक जागरण' भोपाल, अक्टूबर 2006 से साभार

गिरनार तीर्थ पर जैनों के अधिकारों की रक्षा का आश्वासन

गुजरात की नरेन्द्र मोदी सरकार ने पुरातत्त्व महत्त्व के जैन तीर्थ गिरनार पर जैनेत्तर असामाजिक तत्वों द्वारा अवैधानिक अतिक्रमण और पूजा-पाठ नहीं करने देने के मामले में दस दिन से दिल्ली में सल्लेखना-समाधिमरण पर बैठे आचार्य मेरुभूषण जी तथा समाज को आश्वासन दिया कि गुजरात सरकार जैन समुदाय के साथ अन्याय नहीं होने देगी तथा धार्मिक अधिकारों की रक्षा करेगी।

श्री गिरनार राष्ट्र-स्तरीय एक्शन कमेटी के सदस्य तथा गिरनार बचाओ प्रांतीय समिति के महामंत्री श्री निर्मलकुमार पाटोदी, अध्यक्ष माणिकचंद पाटनी तथा प्रचार-प्रसार कर्त्ता पं. जयसेन जैन ने जानकारी दी है कि गुजरात के मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इस मामले में जैनसमुदाय की भावनाओं तथा बढ़ते असंतोष को देखते हुए गृहमंत्री अमितभाई शाह को अपने विशेष दूत के रूप में दिल्ली भेजा। वहाँ आचार्यश्री मेरुभूषण महाराज तथा उपस्थित जैन समाज के प्रतिनिधि नेताओं को गृहमंत्री ने आश्वासन दिया, जिसका सम्मान करते हुए आचार्यश्री ने अपना आमरण सल्लेखना-समाधिमरण समाप्त कर दिया। श्री शाह ने कहा कि गिरनार का मामला न्यायालयों में विचाराधीन होने के कारण ज्यादा कहने की स्थिति में नहीं हैं।

ज्ञातव्य है कि पिछले दो दिन से पूर्व गृहमंत्री लालकृष्ण आडवाणी इस संबंध में गुजरात सरकार के सम्पर्क में थे तथा 12 अगस्त को प्रात: आडवाणी जैन लाल मंदिर गये और मेरुभूषण जी महाराज से सल्लेखना-समाधिमरण समाप्त करने की अपील की। आपने उपस्थित समुदाय के समक्ष कहा कि मैंने राज्य सरकार से न्यायोचित हल निकाले जाने का आग्रह किया है। इस मामले का ऐसा समाधान निकाला जाना चाहिए जिससे सामाजिक सौहार्द बना रहे।

निर्मलकुमार पाटोदी
22, जाय बिल्डर्स कॉलोनी, रानीसती गेट, इन्दौर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यज्ञोपवीत और जैनधर्म

स्व०पं०नाथूराम जी प्रेमी

उपनयन या यज्ञोपवीत-धारण सोलह संस्कारों में से एक मुख्य संस्कार है। इस शब्द का अर्थ समीप लेना है। उप=समीप, नयन=लेना। आचार्य या गुरु के निकट वेदाध्ययन के लिए लड़के को लेना अथवा ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश कराना ही उपनयन है। इस संस्कार के चिह्नस्वरूप लड़के की कमर में मूँज की डोरी बाँधने को मौञ्जीबन्धन और गले में सूत के तीन धागे डालने को उपवीत, यज्ञोपवीत या जनेऊ कहते हैं-"**यज्ञेन संस्कृतं उपवीतं यज्ञोपवीतम्।**" यह एक शुद्ध वैदिक क्रिया या आचार है और अब भी वर्णाश्रम धर्म के पालन करनेवालों में चालू है, यद्यपि अब गुरुगृहगमन और वेदाध्ययन आदि कुछ भी नहीं रह गया है।

यज्ञोपवीत नाम से ही प्रकट होता है कि यह जैन क्रिया नहीं है। परन्तु भगवज्जिनसेन ने अपने आदिपुराण में श्रावकों को भी यज्ञोपवीत धारण करने की आज्ञा दी है और तदनुसार दक्षिण तथा कर्नाटक के जैनगृहस्थों में जनेऊ पहना भी जाता है। इधर कुछ समय से उनकी देखादेखी उत्तर भारत के जैनी भी जनेऊ धारण करने लगे हैं। परन्तु हमारी समझ में यह क्रिया प्राचीन नहीं है, संभवतः नवीं-दसवीं शताब्दि के लगभग या उसके बाद ही इसे अपनाया गया है और शायद आदिपुराण ही सबसे पहला ग्रन्थ है, जिसने यज्ञोपवीत को भी जैनधर्म में स्थान दिया है। इसके पहले का और कोई भी ऐसा ग्रन्थ अब तक उपलब्ध नहीं हुआ है, जिसमें यज्ञोपवीत-धारण आवश्यक बतलाया हो। उपलब्ध श्रावकाचारों में सबसे प्राचीन स्वामी समन्तभद्र का रत्नकरण्ड है, पर उसमें यज्ञोपवीत की कोई भी चर्चा नहीं की गई है। अन्यान्य श्रावकाचार आदिपुराण के पीछे के और उसी का अनुधावन करने वाले हैं, अतएव इस विषय में उनकी चर्चा व्यर्थ है।

1. आचार्य रविषेण का पद्मपुराण आदिपुराण से कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले का है। उसके चौथे पर्व का यह श्लोक देखिए-

वर्णत्रयस्य भगवन् संभवो मे त्वयोदितः।
उत्पत्तिः सूत्रकण्ठानां ज्ञातुमिच्छामि साम्प्रतम्॥

अर्थात् राजा श्रेणिक गौतम स्वामी से कहते हैं कि भगवन्, आपने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की उत्पत्ति तो बतला दी, पर अब मैं सूत्रकंठों की (गले में सूत लटकाने वाले ब्राह्मणों की) उत्पत्ति जानना चाहता हूँ।

विक्रम की पहली शताब्दी के बने हुए प्राकृत पउमचरिय में भी ठीक इसी आशय की एक गाथा है-

वण्णाणसमुप्पत्ती तिण्हं पि सुया मए अपरिसेसा।
यत्तो कहेह भवयं उप्पत्ती सुत्तकंठाणं॥

इन दोनों पद्यों का '**सूत्रकण्ठ**' या '**सुत्तकंठ**' शब्द ध्यान देने योग्य है, जो ब्राह्मणों के लिए प्रयुक्त किया गया है। यह शब्द ब्राह्मणों और उनके जेनऊ के प्रति आदर या श्रद्धा प्रकट करनेवाला तो कदापि नहीं है, इससे तो एक प्रकार की तुच्छता या अवहेला ही प्रकट होती है। ग्रन्थकर्त्ता आचार्यों के भाव यदि यज्ञोपवीत के प्रति अच्छे होते, तो वे इसके बदले किसी अच्छे उपयुक्त शब्द का प्रयोग करते। इससे अनुमान होता है कि जब पउमचरिय और पद्मपुराण लिखे गये थे, तब जैनधर्म में यज्ञोपवीत को स्थान नहीं मिला था।

2. यदि जनेऊ धारण करने की प्रथा प्राचीन होती, तो उत्तर भारत और गुजरात आदि में इसका थोड़ा बहुत प्रचार किसी न किसी रूप में अवश्य रहता, उसका सर्वथा लोप न हो जाता। हम लोग पुराने रीति-रिवाजों की रक्षा करने में इतने कट्टर हैं कि बिना किसी बड़े भारी आघात के उन्हें नहीं छोड़ सकते । यह हो सकता है कि उन रीति-रवाजों का कुछ रूपान्तर हो जाय, परन्तु सर्वथा लोप होना कठिन है। इससे मालूम होता है कि उत्तर भारत और गुजरात आदि में इसका प्रचार हुआ ही नहीं और शायद आदि पुराण का प्रचार हो चुकने पर भी यहाँ के लोगों ने इस नई प्रथा का स्वागत नहीं किया।

अब से लगभग तीन-सौ वर्ष पहले आगरे में पं. बनारसीदास जी एक बड़े भारी विद्वान् हो गये हैं, जिनके '**नाटक समयसार**' और '**बनारसी विलास**' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। उन्होंने '**अर्द्ध-कथानक**' नाम की एक पद्यबद्ध आत्मकथा लिखी है, जिसमें उनकी ५२ वर्ष तक की मुख्य-मुख्य जीवन घटनाएँ लिपिबद्ध हैं। एक बार बनारसीदास जी अपने एक मित्र और ससुर के साथ एक चोरों के गाँव में पहुँच गये। वहाँ रक्षा का और कोई उपाय न देखकर उन्होंने उसी समय धागा बँटकर जनेऊ पहिन लिये और ब्राह्मण बन गये!

सूत काढ़ि डोरा बट्यौ, किए जनेऊ चारि।
पहिरे तीनि तिहूँ जने, राख्यो एक उबारि॥
माटी लीनी भूमिसों, पानी लीनों ताल।
विप्र भेष तीनों बनें, टीका कीनों भाल॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस उपाय से वे बच गये, चोरों के सरदार ने ब्राह्मण मानकर उन्हें छोड़ ही न दिया, अभ्यर्थना भी की और एक साथी देकर आगे तक पहुँचा दिया।

बनारसीदास जी जैनधर्म के बड़े मर्मज्ञ थे। यदि उन्हें इस क्रिया पर श्रद्धा होती, तो वे अवश्य ही जनेऊधारी होते। इससे पता चलता है कि उस समय आगरे आदि के जैनी जनेऊ नहीं पहिनते थे।

3. पद्मपुराण आदि कथा-ग्रन्थों में जिन जिन महापुरुषों के चरित लिखे गये हैं, उनमें कहीं भी ऐसा नही लिखा कि उनका यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ या, उन्हें जनेऊ पहिनाया गया, जब कि उनकी विद्यारम्भ, विवाह आदि क्रियाओं का वर्णन किया गया है। कई महापुरुषों ने अनेक प्रसंगों पर जिनेन्द्रदेव की पूजा की है, वहाँ अनेक वस्त्राभूषणों का वर्णन भी किया गया है, पर जनेऊ का कहीं भी उल्लेख नहीं है।

4. श्वेताम्बरसम्प्रदाय के साहित्य में भी यज्ञोपवीत-क्रिया का विधान नहीं है। श्री वर्द्धमान सूरि के '**आचार-दिनकर**' नाम के एक श्वेताम्बरग्रन्थ में जिनोपवीत का वर्णन है, परन्तु वह बहुत पीछे का, वि.सं. १५०० के लगभग का, ग्रन्थ है और संभवत: दिगम्बरसम्प्रदाय के आदिपुराण के अनुकरण पर ही बनाया गया है। श्वेताम्बर समाज में जनेऊ पहनने का रिवाज भी नहीं है। पहले का भी कोई उल्लेख नहीं मिलता।

संसार का कोई भी धर्म, सम्प्रदाय या पन्थ अपने समय के और परिस्थितियों के प्रभाव से नहीं बच सकता। **उसके पड़ोसी धर्मों का कुछ न कुछ प्रभाव उसपर अवश्य पड़ता है। वह उनके बहुत से आचारों को अपने ढंग से अपना बना लेता है और इसी प्रकार उसके भी बहुत से आचारों को पड़ोसी धर्म ग्रहण कर लेते हैं।** जैनधर्म की अहिंसा का यदि अन्य वैष्णव आदि सम्प्रदायों पर प्रभाव पड़ा है, उसे उन्होंने समधिक रूप में ग्रहण कर लिया है, तो यह असंभव नहीं है कि जैनधर्म ने भी उनके बहुत से आचारों को ले लिया हो, अवश्य ही जैनधर्म के मूलतत्त्वों के साथ सांमजस्य करके। **मूलतत्त्वों के साथ वह सामंजस्य किस प्रकार किया जाता है, इसके समझने के लिए आदिपुराण का 40 वाँ पर्व देखना चाहिए, जहाँ वैदिक ग्रन्थों के समान अग्नि की पूजा विहित बतलाई गई है-**

न स्वतोऽग्नेः पवित्रत्वं देवताभूतमेव वा।
किन्त्वर्हद्दिव्यमूर्तीज्यासम्बन्धात्पावनोऽनलः॥ ८८॥
ततः पूजाङ्गतामस्य मत्वाऽर्चन्ति द्विजोत्तमाः।
निर्वाणक्षेत्रपूजावत्तत्पूजाऽतो न दूष्यति॥ ८९॥
व्यवहारनयापेक्षा तस्येष्टा पूज्यता द्विजैः।
जैनैरध्यवहार्योऽयं नयोऽद्यत्वेऽग्रजन्मभिः॥ ९०॥

अर्थात् अग्नि में न स्वयं कोई पवित्रता है और न देवपना, परन्तु अर्हंत भगवान की दिव्यमूर्ति की पूजा के सम्बन्ध से वह पवित्र हो जाता है। इसलिए द्विजोत्तम अर्थात् जैन ब्राह्मण अग्नि को पूजा के योग्य मानकर पूजते हैं और निर्वाणक्षेत्रों की पूजा के समान इस अग्निपूजा में कोई दोष भी नहीं है। व्यवहारनय की अपेक्षा उसकी (अग्नि की) पूजा द्विजों के लिए इष्ट है और आजकल अग्रजन्मों या जैन ब्राह्मणों को यह व्यवहारनय व्यवहार में लाना चाहिए।

इससे साफ मालूम होता है कि वैदिक धर्म की आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिण अग्नियों की पूजा को ही कुछ परिवर्तित रूप में जैन धर्म में स्थान दिया गया है, पर इसके साथ ही जैनधर्म की मूल भावनाओं की रक्षा कर ली गई है। उपर्युक्त श्लोकों के 'अद्यत्वे' (आजकल या वर्तमान समय में) और 'व्यवहारनयापेक्षा' शब्द ध्यान देने योग्य हैं। इनसे ध्वनित होता है कि यह अग्निपूजा पहले नहीं थी, परन्तु आचार्य अपने समय के लिए उसे आवश्यक बतलाते हैं और व्यवहारनय से कहते हैं कि इसमें कोई दोष नहीं है।

आचार्य सोमदेव ने अपने यशास्तिलक में लिखा है-

यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम्।
सर्वमेव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः॥

अर्थात् सभी लौकिक विधियाँ या क्रियाएँ जैनों के लिए मान्य हैं, जिनमें सम्यक्त्व की हानि न होती हो और व्रतों में कोई दोष न लगता हो।

इस सूत्र के अनुसार ही **अग्निपूजा** और **यज्ञोपवीत** की विधियों को जैनधर्म में स्थान मिल सकता है।

'जैनसाहित्य और इतिहास' (प्र.सं.) से साभार

कृपया ध्यान दें

'जिनभाषित' के जिन सदस्यों को पत्रिका नियमितरूप से न मिल रही हो, वे अपना सदस्यता नं., सदस्यता अवधि एवं पूरा पता पिन कोड नम्बरसहित पोस्ट कार्ड पर लिखकर शीघ्र भेजने की कृपा करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैदिक व्रात्य और श्रमणसंस्कृति

प्रो. (डॉ.) फूलचन्द्र 'प्रेमी'

अथर्ववेद और व्रात्य - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद-वैदिक साहित्य के प्रधान इन चार वेदों में अथर्ववेद का अनेक दृष्टियों में महत्त्व है। अथर्ववेद के पन्द्रहवें काण्ड का नाम ही व्रात्य-काण्ड है। इसके ऋषि अथर्वा, देवता अध्यात्मम् व्रात्य कहे गये हैं। इस व्रात्यकाण्ड में व्रात्यों की जितनी प्रशंसा, गौरवपूर्ण सम्मान और महत्ता आदि वर्णित है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। इस व्रात्य काण्ड के अध्ययन के पश्चात् जर्मन विद्वान् डॉ. हावर ने लिखा है कि 'यह प्रबन्ध प्राचीन भारत के ब्राह्मणेतर आर्य-धर्म को मानने वाले व्रात्यों के उस बृहद् वाङ्मय का कीमती अवशेष है, जो प्रायः लुप्त हो चुका है'।[१] यहाँ वर्णित व्रात्य कोई साधारण व्यक्ति नहीं, अपितु इसने अपने पर्यटन में प्रजापति को शिक्षा और प्रेरणा दी।[२] यहाँ प्रजापति के लिए व्रात्य द्वारा शिक्षा दिया जाना उसकी अत्यधिक महत्ता की ओर सङ्केत करता है।

इसे एक आश्चर्य ही कहा जायगा कि सम्पूर्ण अथर्ववेद के भाष्यकार सायणाचार्य ने पूरे अथर्ववेद का भाष्य लिखकर इसे यों ही इसके सूक्तों का खुलासा किया, किन्तु इसके एकमात्र इस व्रात्यकाण्ड को अपने भाष्य से क्यों वर्जित रखा? इसी एक काण्ड पर भाष्य न लिखकर क्यों छोड़ दिया? यह सभी के लिए उत्सुकता की बात है। इसके सम्भावित कारणों पर आगे विचार किया जायेगा।

पर यह तथ्य इस काण्ड के प्रारम्भ के कुछ भूमिका रूप में मात्र यही अंश लिखकर सायणाचार्य ने क्यों मौन साध लिया कि इस काण्ड में व्रात्य की महिमा वर्णित है। उपनयनादि संस्कारों से हीन पुरुष 'व्रात्य' कहलाता है। ऐसे पुरुषों को लोग वैदिक यज्ञादि क्रियाओं के लिए अनधिकारी, व्यवहार के अयोग्य और अनादृत मानते हैं, परन्तु यदि कोई व्रात्य ऐसा हो, जो विद्वान् और तपस्वी हो तो ब्राह्मण उससे भले ही द्वेष करें, परन्तु वह सर्वपूज्य होगा और देवाधिदेव परमात्मा क तुल्य होगा। इसी आशय को उन्होंने इस प्रकार लिखा-

''अत्र काण्डे व्रात्यमहिमा प्रपंच्यते। व्रात्यो नाम उपनयनादि-संस्कारहीनः पुरुषः, सोऽर्थाद् वेदविहिताः यज्ञादिक्रियाः कर्तुं नाधिकारी, न स व्यवहारयोग्यश्च, इत्यादि जनमतमनादृत्य, व्रात्योऽधिकारी, व्रात्यो महानुभावो, व्रात्यो देवप्रियो, व्रात्यो ब्राह्मणक्षत्रियोर्वर्चसो मूलम्। किं बहुना, व्रात्यो देवाधिदेव एवेति प्रतिपाद्यते। यत्र व्रात्यो गच्छति विश्वं जगद विश्वे च देवास्तत्र तमनुगच्छन्ति, तस्मिन् स्थिते तिष्ठन्ति, तस्मिंश्चलति ते चलन्ति, यदा स गच्छति राजवत् स गच्छतीत्यादि। न पुनरेतत् सर्वव्रात्यपरं प्रतिपादनम्, अपितु कञ्चिद् विद्वत्तमं महाधिकारं पुण्यशीलं विश्वसम्मान्यं कर्मपरैर्ब्राह्मणैर्विद्विष्टं व्रात्यम्, अनुलक्ष्य वचनमिति मन्तव्यम्।''

भाष्यकार सायणाचार्य[३] द्वारा व्रात्यकाण्ड पर मात्र संक्षेप भूमिका रूप कथन करके आगे भाष्य लिखने के प्रति रहस्यपूर्ण मौर पर टिप्पणी करते हुए डॉ. सम्पूर्णानन्द जी ने लिखा है कि- 'सायण द्वारा व्रात्यों के लिए भूमिका में कही गयी बातें भले ही सत्य हों, किन्तु अपर्याप्त हैं। उन्हें यह बतलाना चाहिए था कि स्तुति में क्या कहा गया है? 'उसने अन्त में सोना देखा' उस व्रात्य का 'इन सबका अमृतत्व एक है, आहुति ही है- जैसे अनेक मन्त्र हैं, जो व्याख्या की अपेक्षा करते हैं। सायण ने चाहे जिस कारण से व्याख्या न की हो, किन्तु अर्थबोध के लिए स्पष्टीकरण आवश्यक है। पाश्चात्य विद्वान् भी कुछ स्थिर न कर सके। आर्य समाज के पण्डितों ने अधिक सफल प्रयास किया, परन्तु देव जैसे शब्दों को सर्वत्र केवल मनुष्यपरक मानने से उनकी व्याख्या कहीं बहुत 'स्थूल' हो जाती है।[४]

अथर्ववेद में व्रात्य की महिमा - वस्तुतः अथर्ववेद का 'व्रात्य' अधिकारी, महानुभाव, देवप्रिय और ब्राह्मण-क्षत्रिय के वर्चस्व का आधार है। यद्यपि कर्मकाण्डी ब्राह्मण उससे वृथा द्वेष करते हैं, किन्तु अथर्ववेद में वर्णित 'व्रात्य' देव का भी देव है। इतना ही नहीं, अपितु यह 'व्रात्य' जहाँ जाता है, सारी सृष्टि और सारे देव उसके पीछे जाते हैं, उसके ठहरने पर ठहर जाते हैं और उसके चलने पर चलते हैं। जब कहीं वह जाता है, राजा के समान जाता है। इस तरह यहाँ वर्णित व्रात्य उत्कृष्ट विद्वान् तथा सिद्धि- सम्पन्न, जगद्वन्द्य, पुण्यात्मा महापुरुष है, इतना ही नहीं, अपितु उसी व्रात्य को अथर्ववेद में इतनी अधिक ऊँचाई, गौरव एवं पूज्यभाव से प्रस्तुत करना अवश्य ही व्रात्यों की महानता का द्योतक है, किन्तु परवर्ती वैदिक-साहित्य में जिस व्रात्य के लिए संस्कारहीन, समाज में व्यवहार के अयोग्य, वर्णसंकर आदि तक कहकर अत्यन्त उपेक्षित और निम्न रूप में प्रस्तुत किया गया।

इस अध्ययन से ऐसा लगता है कि व्रात्यों के प्रति लोगों का सहज आकर्षण, इनकी प्रभावना एवं आध्यात्मिक गुणसम्पन्न होने से और आर्यजन कहीं इनके अनुयायी न बन जायें तथा यज्ञादि क्रियाओं के प्रति आर्यों की विमुखता न हो जाए आदि कारणों की सम्भावना के भयवश ही इनसे प्रभावित हो, इतने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिक सम्माननीय व्रात्यों को परवर्ती वैदिक ग्रन्थों में एक सुनियोजित रूप में निन्दित रूप में प्रस्तुत किया जाना बड़े आश्चर्य की बात तो है ही, साथ ही ऐसा कार्य अनेक प्रश्नों को भी जन्म देता है।

अथर्ववेद में कहा है कि 'जिसके घर व्रात्यब्रुव अर्थात् व्रात्य आत्मध्यानी (योगी) न होते हुए भी अपने को व्रात्य कहता है, ऐसा नाममात्र का अतिथि व्रात्य घर पर आ जाये, तो वह उसका यथोचित आदर-सम्मान करे, कुवचन बोलकर उसे घर से न निकाले। अपितु इस देवता के लिए जल स्वीकार करने की प्रार्थना करता हूँ, इस देवता को निवास देता हूँ, इस देवता को (आहारादि) परोसता हूँ, ऐसी भावना से उसको भी भोजन परसे।[५]

इस तरह अथर्ववेद का व्रात्य एक अव्रात्य के प्रति भी सहिष्णु रूप में वर्णित है, क्योंकि अतिथि के रूप में ये किसी अव्रात्य को भी घर से अपमानित करके भगाना नहीं चाहते - अथ यस्य व्रात्यो व्रात्यब्रुवो नामबिभ्रत्यतिथिर्गृहानागच्छेत्। कर्षेदेनं न चैनं कर्षेत्... (अथर्ववेद, १५/२/६/११-१४)। अतः जो व्यक्ति ऐसे देवता (व्रात्य) की निन्दा करता है, वह विश्वदेवों की हिंसा करता है तथा उस देवता (व्रात्य) का सत्कार करने वाला वृहत्साम रथन्तर, सूर्य और सब देवताओं की प्रिय पूर्व दिशा में अपना प्रिय धाम बनाता है, उसे कीर्ति और यश पुरस्सर होते हैं।

व्रात्य का निन्दक यज्ञायज्ञिय, साम, यज्ञ, यजमान, पशु और वामदेव्य का अपराधी होता है और जो उस व्रात्य का सत्कार करता है, तो यज्ञायज्ञिय आदि की प्रिय दक्षिण दिशा में उसका भी प्रिय धाम होता है।[६]

आत्म (ब्रह्म) के रूप में व्रात्य का महत्त्व दर्शाते हुए कहा गया कि उसके विभिन्न दिशाओं में गमन करने पर जल, वरुण, वैरूप, वैराज, सप्तऋषि, सोम आदि उसके पीछे-पीछे चले।[७] यह व्रात्य, मरुत, इन्द्र, वरुण, सोम, विष्णु, रुद्र, यम, अग्नि, बृहस्पति, ईशान, प्रजापति, परमेष्ठी तथा आनन्द ब्रह्म के रूप में परिवर्तित होता है।[८] यह व्रात्य दिन और रात्रि में सभी के लिए पूज्यनीय है।[९]

आगे एक विज्ञ व्रात्य की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि यह व्रात्य जिस राजा का अतिथि हो, वह उसका सम्मान करे। ऐसा करने से वह राष्ट्र और क्षेत्र को नष्ट नहीं करता। 'तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्ग्रहानागच्छेत्। श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते तथा राष्ट्राय ना वृश्चते' (अथर्ववेद, १५/१०/१-२)।

व्रात्य की महत्ता में आगे कहा है कि यदि यज्ञ करते समय व्रात्य आ जाय तो याज्ञिक को चाहिए कि व्रात्य की इच्छानुसार यज्ञ करे अथवा यज्ञ बन्द कर दे अथवा जैसा व्रात्य यज्ञविधान बताये, वैसा करें। विद्वान् ब्राह्मण व्रात्य से इतना ही कहे कि जैसा आपको प्रिय लगे, वैसा ही किया जायगा।[१०] इस व्रात्यकाण्ड के अन्त में कहा है कि 'नमो व्रात्याय' अर्थात् आत्मसाक्षात् द्रष्टा उस महान् व्रात्य को नमस्कार है।[११]

यह पहले ही कहा गया है कि अथर्ववेद के इस व्रात्यकाण्ड के सभी सूक्तों का देवता अध्यात्मम् (व्रात्य) है, जिसका सीधा सम्बन्ध अध्यात्मप्रधान श्रमण-संस्कृति से जुड़ता है। वस्तुतः व्रात्य यज्ञविराधी थे। व्रतों तथा आत्म-साधना में उनका दृढ़ विश्वास था। उनकी दिनचर्या कठिन थी। जब आर्य लोग इन व्रात्यों के सम्पर्क में आये, तो उन्होंने इनके आध्यात्मिक ज्ञान, साधना तथा उच्च मान्यताओं को देखा, समझा तो, इनकी प्रशंसा की और इनसे प्रभावित भी हुए।

अथर्ववेद के ही अनुसार जो देहधारी आत्मायें हैं, जिन्होंने आत्मा को देह से ढका है, इस प्रकार के जीवसमूह समस्त प्राणधारी चैतन्य सृष्टि के स्वामी व्रात्य कहे जाते हैं। इन व्रात्यों ने तप के द्वारा आत्मसाक्षात्कार किया। दार्शनिकों की यह धारणा भी है कि सांख्यदर्शन के आदि मूलस्रोत व्रात्यों की उपासना में निहित थे।[१२]

तैत्तरीय ब्राह्मण में कहा है- 'यस्य पिता पितामहादि सुरां न पिवेत् सः व्रात्यः' अर्थात् जिसके कुल में पिता, पितामह आदि ने सुरापान नहीं किया वह 'व्रात्य' है। इस पूरे सूक्त का देवता तथा इस काण्ड में सभी सूक्तों के देवता अध्यात्मम् व्रात्य लिखा गया है।

इस अध्यात्म से हम आत्मज्ञान की परम्परावादी श्रमण-संस्कृति को बीजरूप में यहाँ प्राप्त करते हैं। ये व्रात्य केवल भौतिकता का ही ज्ञान नहीं रखते थे, अपितु इन व्रात्यों को देवयान तथा पितृयान-दोनों मार्गों का ज्ञान भी है (अथर्ववेद, १५/१२/५)। इन्हीं व्रतों को श्रमण-परम्परा में महाव्रत और अणुव्रत के नाम से कहा गया है। योगदर्शन (३/५३) में ये जाति, काल, देश से अनवच्छिन्न सार्वभौम व्रत कहे गये हैं।[१३]

इसीलिए डॉ. हॉवर ने भी व्रतों में दीक्षित को व्रात्य कहा है, जिसने आत्मानुशासन की दृष्टि से स्वेच्छापूर्वक व्रत स्वीकार किये हों, वह 'व्रात्य' है। कुछ विद्वानों ने विभिन्न जातियों के दिगम्बर पवित्र मनुष्यों के संघ को व्रात्य कहा है।[१४] श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार के अनुसार व्रात्य अर्हतों और चैत्यों के अनुयायी कहलाते थे।[१५] प्रसिद्ध विद्वान् आई० सिन्दे ने व्रात्यों को आर्यों से पृथक् बताते हुए लिखा है कि व्रात्य कर्मकाण्डी ब्राह्मणों से बाहर के थे, किन्तु अथर्ववेद ने उन्हें आर्यों में सम्मिलित ही नहीं किया, अपितु उनमें से उत्तम साधना करने वालों को उच्चतम सम्मान भी दिया।[१६]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री ई॰जे॰ रेप्सन ने लिखा है[१७] कि व्रात्य बनजारे थे, जो खेती नहीं करते थे। वे पगड़ी बाँधते थे, माल लादते और घूम-घूम कर व्यापार करते थे।[१८]

उनकी भाषा आर्यों की भाँति शिष्ट (संस्कृत) नहीं, अपितु वे संस्कृत से भिन्न सरल एवं बोलचाल की प्राकृत भाषा का व्यवहार करते थे। प्रायः संयुक्त तथा उच्चारण में कठिन व्यञ्जनों का परिहार करते थे। निश्चतरूप से नहीं कहा जा सकता है कि वे कहाँ बसे हुए थे, किन्तु प्राप्त सूचनाओं के आधार पर कुछ लोग पश्चिम में बसे हुए थे और कम से कम कुछ लोग तो निश्चित रूप से मगध के निवासी थे।

श्री रामचन्द्र जैन एडवोकेट का मत है कि चौदह सौ ईसा पूर्व भारत के पूर्वी और दक्षिणी तथा अन्य भागों में व्रात्य, इक्ष्वाकु, मल्ल, लिच्छवि, कसिस, विदेह, मागध और द्रविड लोग बसे हुए थे। पूर्वी भारत व्रात्यधर्म का मुख्य केन्द्र था।[१९]

आर्हत् और बार्हत्- डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री [२०] ने वैदिक-साहित्य में उल्लिखित आर्हत् और बार्हत् परम्पराओं का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि वैदिककाल से ही भारतीय-संस्कृति की दो परम्पराएँ प्रचलित थीं। एक यज्ञ-याग संस्कृति को मानती थी और दूसरी कर्मवाद को। जो कर्म को प्रधान मानती थी, वह 'समण' या 'श्रमण' कही गयी और जो प्राकृतिक शक्तियों को प्रधान मानती थी, यज्ञ-याग के रूप में उसकी पूजा करती थी, वह आगे चलकर ब्रह्माराधिनी ब्राह्मण (वैदिक) संस्कृति के नाम से विश्रुत हुई।

आर्हत् आत्मवादी थे। उनका सर्वमान्य सिद्धान्त था- 'अप्पा सो परमप्पा' अर्थात् प्रत्येक आत्मा अपने शुद्ध, स्वाभाविक रूप में परमात्मा ही है। छान्दोग्योपनिषद् (५/३/७) में कहा है कि पञ्चाग्नि विद्या का ज्ञान क्षत्रियों को ही हुआ था, जिसे बाद में ब्राह्मणों ने क्षत्रियों के पास आकर ग्रहण किया।

इस तरह बार्हत् लोग किसी अलौकिक शक्ति में विश्वास रखते थे। वैदिक ऋचाओं में ऐसा ही असाधारण एवं अप्रतिम लोकोत्तरवासियों का आह्वान किया गया है, किन्तु आर्हत्-परम्परा आत्मवादी थी, यज्ञ, वेद एवम् इसके क्रियाकाण्ड में विश्वास नहीं करती थी। अतः निर्विवादरूप में यह प्राग्वैदिक श्रमण-संस्कृति थी, किन्तु पाश्चात्य विद्वानों में बेबर और हावर आदि ने प्रारम्भ में आर्हत् (जैन) धर्म की अनभिज्ञता के कारण बौद्धों को व्रात्य कहा था, किन्तु यह स्पष्ट हो गया है कि प्रारम्भ से ही रामायण और महाभारतकाल तक व्रात्यों का गुरु-सम्प्रदाय था तथा वेदों के हिरण्यगर्भ अर्थात् ऋषभदेव ही प्रजापति थे, जिनसे ही असि, मसि, कृषि, विद्या वाणिज्य और शिल्प कलाओं का प्रारम्भ हुआ। यही ऋषभदेव श्रमण (जैन) परम्परा के आदि (प्रथम) तीर्थंकर थे।

अर्धमागधी प्राकृत-साहित्य का ऋषिभाषित (इसिभासियाइं सुत्ताइं) नामक एक अत्यधिक प्राचीन और महत्त्वपूर्ण आगम ग्रन्थ है।[२१] इसमें ऐसे पैंतालिस ऋषियों एवं उनके उपदेशों का उल्लेख भी है, जो जैन, बौद्ध एवं वैदिक इन तीनों परम्पराओं में समान रूप से मान्य रहे हैं। इसके अध्ययन से ऐसा लगता है कि आरम्भ में ये सभी ऋषि व्रात्य, आर्हत् या श्रमण-परम्परा से निकट सम्बद्ध एवं मान्य रहे होंगे। बाद में कुछ ऋषि अन्य परम्पराओं द्वारा मान्य हो जाने अथवा किञ्चित् सैद्धान्तिक मतभेद होने के कारण श्रमण जैन परम्परा ने इन्हें उपेक्षित कर दिया। यद्यपि इनमें से अनेकों को जैन-परम्परा आज भी मान्य करती है, किन्तु अन्य परम्पराओं में अनेक ऋषि आज भी देवों के तुल्य सम्मान्य हैं, जिनमें से वरुण, वायु, यम, सोम, वैश्रमण, उद्दालक, सारिपुत्त, नारद, वज्जिपुत्र, अंगिरस, याज्ञवल्क्य आदि उल्लेखनीय हैं।

इस सब विवेचन से स्पष्ट है कि आर्यों की दृष्टि में द्रविड़, असुर, राक्षस, म्लेच्छ, दास, नाग आदि रूप में प्रसिद्ध अनार्य जातियाँ अनार्यदेव, अनार्य भाषा में थीं, ये सब प्राग्वैदिक रूप में भारत की मूल निवासी थीं, जिनका सीधा सम्बन्ध व्रात्य अर्थात् श्रमण-संस्कृति से जुड़ता है।

व्रात्य एवं ऋषभदेव - वैदिक वाङ्मय के परिप्रेक्ष्य में व्रात्य शब्द और उसके स्वरूप का सांगोपांग विवेचन यथा-उपलब्ध विविध प्रमाणों के आधार पर प्रस्तुत करने का यहाँ प्रयास किया गया है।

वस्तुतः यह 'व्रात्य' शब्द व्रत से बना है। व्रत का अर्थ है-'व्रियते यद् तद् व्रतम्, व्रते साधुः कुशली वा इति व्रात्यः'। अर्थात् वे नियम या सङ्कल्प व्रत हैं, जिनके द्वारा आत्मविकास की दिशा प्राप्त हो और इन व्रतों में जो साधु है अथवा इनमें जो कुशल हैं, वह व्रात्य है। इसीलिए अथर्ववेद-भाषाभाष्य में व्रात्य का अर्थ सद्व्रतधारी, सदाचारी, सब समूहों का हितकारी परमात्मा बतलाया गया है।[२२]

व्रत को ही व्रात्य का मूल मान लेने पर व्रात्यों का सीधा सम्बन्ध श्रमण-संस्कृति से जुड़ता है, क्योंकि व्रत मूलतः श्रमण-संस्कृति की अपनी स्वतन्त्र एवं मौलिक अवधारणा है और व्रतों का आद्यप्रवर्तन आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव द्वारा हुआ, जो इनके बाद के अन्य तेईस तीर्थंकरों द्वारा क्रमशः प्रवर्तित होते हुए आज तक अक्षुण्ण है। इन्हीं के अनुकरण पर अमान्य अनेक भारतीय धर्म-परम्पराओं ने व्रतों की इस साधना पद्धति को विभिन्न रूपों में अङ्गीकार किया।

आर्य-मंजूश्री-मूलकल्प नामक बौद्ध-परम्परा के ग्रन्थ में भारतवर्ष के आदि सम्राटों में नाभिपुत्र ऋषभदेव को 'व्रतपालक' कहा गया है।[२३] श्रीमद्भागवत् में भी ऋषभदेव का वर्णन समदृष्टा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगी के रूप में वर्णित है। इतना ही नहीं वैदिक साहित्य में अनेक ग्रन्थों में तो ऋषभदेव को सादर उल्लिखित किया ही गया है।

प्राचीनतम वेद ऋग्वेद में न केवल सामान्य रूप से श्रमण परम्परा और विशेषकर जैन-परम्परा से सम्बन्धित व्रात्य, निर्ग्रन्थ, अर्हन्, अर्हन्त, व्रात्य, वातरशना मुनि, श्रमण आदि शब्दों के भी उल्लेख मिल जाते है, अपितु उसमें ऋषभदेव से सम्बन्धित अनेक ऋचायें भी विशेष दृष्टव्य हैं। डॉ० राधाकृष्णन ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन फिलॉसोफी' (भाग-१, पृ.२८७) में लिखा है कि ऋग्वेद में जैनों के आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से सम्बन्धित निर्देश उपलब्ध होते हैं।

वस्तुत: ऋषभदेव भारतीय संस्कृति की निवृत्ति प्रधान श्रमणधारा के आदि तीर्थंकर है। वैदिक परम्परा अवतारों में ऋषभदेव को आठवें क्रम में मानती है, किन्तु आरम्भिक अतवारों की अपेक्षा वे प्रथम मानवावतार के रूप में मान्य हैं। इस दृष्टि से ऋषभदेव वैदिक एवं श्रमणधारा के समन्वयबिन्दु के रूप में मान्य हैं।

उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि व्रात्य संस्कृति जिसे आर्हत् एवं श्रमण-संस्कृति कहा गया है, यह अपनी उपर्युक्त परम्पराओं में प्राग्वैदिककाल में ही समृद्धशाली रही है। अत: भ्रान्त धारणाओं को दूर करते हुए भारतीय इतिहास में श्रमण-संस्कृति को प्राग्वैदिककालीन मूल एवम् आदि संस्कृति के रूप में मान्य किया जाना चाहिए।

उपसंहार

इस प्रकार अध्यात्म प्रधान श्रमण-संस्कृति, जिसे भारत की मूल संस्कृति कहा गया है, उसमें मानवीय ही नहीं अपितु सभी सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवों के प्रति समानता, आत्मविकास, गुण-पूजा, परलोक, कर्मफल, सर्वोदय आदि पर प्रारम्भ से ही अधिक जोर दिया जाता रहा है, जो सर्वथा स्वाभाविक था। साथ ही अथर्ववेदीय तथा व्रात्यों के अन्यान्य विवेचन से यह स्पष्ट ही है कि इनका सीधा सम्बन्ध श्रमण-संस्कृति से है।

पं. बलभद्र जी ने ठीक ही लिखा है कि यही व्रात्य आजकल के जैनमतानुयायी हैं। महाव्रतपालक व्रात्य जैन साधु हैं और सामान्य व्रात्य जैनधर्मानुयायी हैं। महाव्रत ही आज का जैनधर्म है। इन व्रात्यों की संस्कृति आध्यात्मिक थी, जबकि आर्य लोगों की संस्कृति आधिदैविक थी। व्रात्यों की योगमूलक साधना, ध्यानमूलक तपस्या, अहिंसामूलक विचार वैदिक आर्यों में अत्यधिक लोकप्रिय होते गये। व्रात्यों की मान्यता थी कि व्यक्ति अपने प्रयत्न द्वारा कैवल्य प्राप्त कर सकता है।[२४]

सन्दर्भ :

१. जैनसाहित्य का इतिहास, पूर्वपीठिका, पृ. १११ से उद्धृत।

२. व्रात्य आसीदीयमान एवं स प्रजापति समैरयत्। अथर्ववेद, १५.१.१।

३. चौदहवीं सदी के आचार्य सायण ने विजयनगर साम्राज्य के राजसी माहौल में रहकर वेदों के भाष्यों की रचना की थी। भारत-गाथा, सूर्यकान्त बाली, प्रका. निष्ठा, दिल्ली।

४. अथर्ववेदीयं व्रात्यकाण्डम् (डॉ. सम्पूर्णानन्दकृत श्रुतिप्रभभाष्य - हिन्दी व्याख्या-सहितम्) भूमिका, पृ. २-३।

५. अथर्ववेद १५.२.६, ११-१४।

६. अथर्ववेद, १५.२.८, ११-१४।

७. अथर्ववेद, १५.२.१५-१६, २२।

८. अथर्ववेद, १५.१४.१-२४।

९. अथर्ववेद, काण्ड १५ के सम्पूर्ण सूक्त।

१०. अथर्ववेद, १५.१.१-९।

११. अथर्ववेद, १५.१८.५।

१२. ब्राह्मण तथा श्रमण-संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ. ७६।

१३. ब्राह्मण तथा श्रमण-संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ. ७८ से उद्धृत, लेखक डॉ. जगदीशदत्त दीक्षित, प्रका.-भा. विद्याप्रकाशन, दिल्ली, १९८४।

१४. हिस्ट्री एण्ड डाक्ट्रिन्स ऑफ आजीवकास-ए.एल.भाषम्, पृ. ८।

१५. भारतीय इतिहास की रूपरेखा, पृ. ३४९।

१६. द रिलीजन एण्ड फिलासफी ऑफ अथर्ववेद, पृ. ७।

१७. द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, जिल्द १, पृ. १११ (भारतीय द्वितीय संस्करण, १९६२)।

१८. **विशेष टिप्पणी** - भारत के अनेक क्षेत्रों, विशेषकर मध्यप्रदेश के बुन्देलखण्ड में यह सब वणिक्वृत्तिकार्य, जिसे 'बंजी' कहते हैं, आज तक प्रचलित है।

१९. आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ, तृतीय खण्ड के पृ. ७-८ पर लिखित 'प्री आर्यन भारतीय रिलीजन' नामक लेख से उद्धृत।

२०. बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ, पृ. २००-२०१ में डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री का लेख 'जैनधर्म की प्राचीनता एवं सार्वभौमिकता', कलकत्ता, १९६७।

२१. प्राकृत भारती, जयपुर से १९८८ में प्रकाशित।

२२. अथर्ववेद, भाषाभाष्ये पञ्चदश काण्डम्, १५.२.१०.१ एवं १५.१.१.१, पृ. ३०७ दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली, १९५७।

२३. प्रजापते: सुतो नाभि तस्यामी अरिमुच्यति।
नाभिनो ऋषभपुत्रो कै: सिद्धकर्मदृढव्रत:॥ २९०॥

२४. अहिंसा दर्शन, पं. बलभद्र जैन, पृ. २८।

आचार्य एवं अध्यक्ष
जैनदर्शन विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वन्दना का व्याकरण

प्राचार्य पं. निहालचंद जैन

पूज्य मुनि श्री त्रिलोकभूषण जी व पूज्य मुनि श्री अतिवीर जी महाराज के सान्निध्य में १४ अक्टूबर ०६ को कैलाश नगर, नई दिल्ली में 'वन्दना विधि' पर एक राष्ट्रीय विद्वत्संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें लगभग १२ देश के ख्यातिप्राप्त विद्वानों ने अपनी सहभागिता की। संगोष्ठी में 'वन्दना विधि' पर एक आलेखनुमा ६ पृष्ठीय परिपत्र भी (आगमप्रमाण-सहित) सन्दर्भ हेतु वितरित किया गया, जिसमें पंचपरमेष्ठी को नमोऽस्तु या वंदामि द्वारा नमस्कार करने की पुष्टि की गयी। प्रश्न यह उठा कि जैनागम में दो ही लिंग कहे गये हैं- एक सागार और दूसरा निरागार। आर्यिकाओं को किस लिंग में परिगणित किया जाये? आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने चारित्रप्राभृत में दो प्रकार का चारित्राचार कहा है-

दुविहं संजमरणं सायारं तह हवे णिरायारं।
सायारं सग्गंथे परिग्गहारहिय खलु णिरायारं॥ २०॥

एक सागार और दूसरा निरागार। सागार परिग्रहसहित श्रावक के होता है और निरागार परिग्रहरहित मुनि के होता है। दर्शनप्राभृत में कहा है-

एक्कं जिणस्स रूवं वीयं उक्किट्ठसावयाणं तु।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थं पुण लिंग दंसणं णत्थि॥८॥

एक जिनेन्द्र भगवान का नग्न रूप, दूसरा उत्कृष्ट श्रावकों का और तीसरा 'अवरस्थित' अर्थात् जघन्य पद में स्थित आर्यिकाओं का लिंग है। चौथा लिंग दर्शन में है नहीं। अब यह विचारणीय है कि कैसे माना जाय कि तीसरा लिंग 'आर्यिका' का है?

सूत्रप्राभृत की गाथा नं. 22 देखें-

लिंगं इत्थीणं हवदि भुंजइ पिडं सुएयकालम्मि।
अज्जिय वि एक्कवत्था वत्थावरणेण भुंजेइ॥ 22॥

तीसरा स्त्रियों का लिङ्ग इस प्रकार है- इस लिंग को धारण करने वाली स्त्री दिन में एक ही बार आहार ग्रहण करती है। वह आर्यिका भी हो तो एक ही वस्त्र धारण करे और वस्त्र के आवरण सहित भोजन करे।

अब दूसरा विचारणीय चरण यह है कि तीनों लिङ्गों की विनय किस प्रकार की जाए।

वंदामि तवसमण्णा सीलं च गुणं च बंभचेरं च।
सिद्धिगमणं च तेसिं सम्मत्तेण सुद्धभावेण॥ २८॥

दर्शनप्राभृत

मैं उन मुनियों को वंदामि या नमस्कार करता हूँ जो तप से सहित हैं। उनके शील को, गुण को, ब्रह्मचर्य को और मुक्ति प्राप्ति को भी सम्यक्त्व तथा शुद्ध भाव से वन्दना करता हूँ।

जो संजमेसु सहिओ आरम्भ परिग्गहेसु विरओ वि।
सो होइ वंदणीओ ससुरासुरमाणुसे लोए॥ ११॥

सूत्रप्राभृत

आगे शेष दो लिङ्गों की विनय किस प्रकार की जाए?

अवसेसा जे लिंगी दंसणणाणेण सम्मसंजुत्ता।
चेलेण य परिगहिया ते भणिया इच्छणिज्जाय॥ १३॥

सूत्रप्राभृत

दिगम्बरमुद्रा के सिवाय जो अन्य लिङ्गी हैं, सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान से सहित हैं तथा वस्त्र के धारक हैं, वे इच्छाकार करने के योग्य हैं। इस प्रकार आ. कुन्दकुन्ददेव ने शेष दोनों लिंगों की विनय करने के लिए स्पष्ट रूप से 'इच्छाकार' शब्द का प्रयोग किया है। नीचे आगमग्रन्थों के गाथारूप प्रमाणों से वन्दामि (वन्दना) शब्द का प्रयोग पंचपरमेष्ठी के लिए किया गया है। सन्दर्भ देखें-

१. **लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।**
अरहंते कित्तिस्से चौवीसं चेव कवलिणो ॥ २॥
उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमई च।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥ ३॥
सुविहिं च पुष्फयंतं सीयले सेयं च वासुपुज्जं च।
विमल मणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ॥ ४॥

अर्थात् सिद्धभक्ति, अरिहंतभक्ति, चौबीस तीर्थंकरों की भक्ति, आचार्यभक्ति, योगभक्ति, और श्रुतभक्ति तथा इनकी अंचलिका-"अच्चेमि पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, णिच्चकालं अच्चंति पुज्जंति वंदंति णमस्संति" में वंदामि शब्द के द्वारा विनय की गई है।

२. श्रवणवेलगोल के चन्द्रगिरि पर्वत पर पार्श्वनाथ वस्ति में एक स्तम्भलेख शक सं. १०५० का है, जिसमें कुन्दकुन्दाचार्य के लिए 'वन्द्य' शब्द का प्रयोग किया गया है-

वन्द्योविभुर्भुवि न कैरिह कौण्डकुन्दः।
कुन्दप्रभा-प्रणयि-कीर्ति-विभूषिताशः॥

जैन शिलालेख संग्रह १, पृष्ठ १०२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. निर्मल चारित्र के धारी आचार्यों को "**वंदित्ता**" शब्द से नमस्कार किया गया है।

बहुसत्थ अत्थजाणे, संजमसम्मत्तसुद्धतवयरणे
वंदित्ता आयरिए कसायमलवज्जिदे सुद्धे॥१॥

बोधप्राभृत

४. परमात्मप्रकाश में श्रावकों को कहा गया है कि जिन्होंने मुनिवरों को दान नहीं दिया और पंचपरमेष्ठियों की वंदना नहीं की, उन्हें मोक्ष की प्राप्त कैसे हो सकती है?

दाणु ण दिण्णउ मुणिवरहँ णवि पुज्जिउ जिणणाहुं।
पंच ण वंदिय परम-गुरू किमु होसइ सिव-लाहु॥ २/१६८॥

इन प्रमाणों के परिप्रेक्ष्य में यह प्रश्न मैं विद्वानों के विचारार्थ छोड़ता हूँ कि आगम से परिपुष्ट विनय-भक्ति के लिए 'आर्यिका' माता जी को क्या '**वन्दामि**' कहना चाहिए या '**इच्छाकार**'? अब तो '**आर्यिकाएँ**' अपनी महापूजन तक करवाने लगी हैं और करवानेवाले को पुरस्कृत भी किया जाने लगा है।

वस्तुतः 'वन्दना' शब्द का अवमूल्यन हुआ है। हर ब्रह्मचारी भैया या ब्रह्मचारिणी दीदी अपने लिए 'वन्दना' कहलवाने के लिए प्रेरित करती हैं। उनकी विनय के लिए 'जय-जिनेन्द्र' किया जावे जैसा श्रावक के लिए किया जाता है। एक दूसरे शब्द का भी अवमूल्पन हुआ है। कुछ आचार्य अपने नाम के पूर्व विशेषण के रूप में 'विश्ववंदनीय' लगाने पर उसका निषेध न करके गौरान्वित होते हैं, जबकि तीर्थंकर के लिए 'विश्ववंदनीय' लगता है। पूर्वाग्रह से मुक्त होकर इस पर भी विचार किया जाए कि आचार्य को कितने ऊँचे विशेषण से विभूषित किया जावे? 'परमात्मा' के लिए लगाये जानेवाले विशेषणों से आचार्य को सम्बोधित न किया जाए क्योंकि वह छद्मस्थ हैं, सर्वज्ञ नहीं।

उक्त संगोष्ठी में विद्वानों की आम सहमति यह देखी गयी कि आर्यिकाओं की परम्परा से 'वंदामि' शब्द से विनयभक्ति की जा रही है, जो इतनी जल्दी नहीं छोड़ी जा सकती, लेकिन सैद्धान्तिक रूप से यह सहमति भी मिली कि केवल पंचपरमेष्ठियों के लिए 'नमोऽस्तु' या 'वंदामि' का प्रयोग आगमसिद्ध है।

जवाहर वार्ड, बीना फोन : (07580) 224044

सम्पादकीय टिप्पणी - यह सत्य है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने निर्ग्रन्थ मुनियों की तुलना में सग्रन्थ आर्यिकाओं के प्रति 'इच्छाकार' ('इच्छामि' शब्द के उच्चारण) द्वारा विनय प्रकट करने का उपदेश गृहस्थों को दिया है, तथापि ११वीं शती ई० के इन्द्रनन्दी ने 'नीतिसार समुच्चय' में, १३वीं शती ई० के पं० आशाधर जी ने सागारधर्मामृत में तथा उसके बाद के 'सिरिवालचरिउ' में आर्यिकाओं को 'वन्दना' या 'वन्दामि' शब्द से वन्दनीय बतलाया है। (देखिए, 'जिनभाषित' के इसी अंक में पं० रतनलाल जी बैनाड़ा का जिज्ञासा-समाधान)।

सम्पादक

डॉ. यतीश जैन राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी प्रसिद्ध पर्यावरणविद, शिक्षाविद्, लेखक डॉ. यतीश जैन को महामहिम राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम द्वारा रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर में आयोजित 21 वें दीक्षांत समारोह में अर्थशास्त्र विषय में तीन स्वर्ण पदक एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया।

श्रीमती ज्योति जैन

पन्नालाल जी जैन कुसुंबा वालों का निधन

कुसंबा (महाराष्ट्र) के श्री पन्नालालजी जिवलालजी ने ९४ वर्ष में दिनांक २३.०९.२००६ को प्रातः २ बज के ५५ मिनिट पर णमोकार महामंत्र का उच्चारण करते हुए इस नश्वर शरीर का त्याग किया। श्री पन्नालाल जी मुनिभक्त, संयमी, श्रावक की षट् आवश्यक क्रिया में निपुण और हर धार्मिक कार्यों में हमेशा अग्रेसर रहने वाले थे।

अरुण पन्नालाल जैन

डॉ. मुकेश जैन की पुस्तक का विमोचन

'**मध्यप्रदेश की मृण्मूर्ति कला**' पर इतने अच्छे ग्रंथ का प्रकाशन एक महत्त्वपूर्ण कार्य है और मैं इस साहसिक कार्य के लिये डॉ. मुकेश जैन को हार्दिक बधाई देता हूँ। उक्ताशय के उद्‌गार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली के अध्यक्ष प्रो. सुखदेव थोरात ने विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित सम्मान समारोह में उक्त ग्रंथ का विमोचन करते हुए व्यक्त किये। कार्यक्रम के अध्यक्ष रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर के कुलपति डॉ. एस.एम.पाल खुराना ने अपनी शुभकामनाएँ दी।

सुरेश सरल, 293, गढ़ाफाटक, जबलपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन समाज को राष्ट्रीय स्तर पर अल्पसंख्यक समुदाय घोषित किया जाय

अरुण जैन

सदस्य-म.प्र. राज्य अल्पसंख्यक आयोग

स्वतंत्रताप्राप्त भारत में कभी भी किसी ने किसी अन्य धर्म के प्रति या उनके पवित्र धार्मिक स्थलों के साथ दुर्भावना या छेड़खानी नहीं की है, हमारा देश पूर्णरूपेण एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है और इस गौरव को बनाये रखने की सम्पूर्ण जिम्मेदारी देश के प्रत्येक नागरिक तथा शासन की है। लाखों धर्मावलम्बी यात्री सेवा एवं दर्शनार्थ देश-विदेश के कोने-कोने से प्रतिवर्ष यहाँ आते-जाते हैं। हमारी प्राचीन संस्कृति एवं सम्पदाओं और पुरातत्त्व की अपनी अहमियत है, जो पावन एवं वंदनीय है। यदि 350 वर्ष का राम मंदिर या 800 वर्ष का पूर्ण ध्वस्त सोमनाथ मंदिर का पुन: निर्माण एक बहुसंख्यक समुदाय की धार्मिक आस्था का प्रमाण है, तो देश के अल्पसंख्यक समुदायों की आस्था एवं उनकी धार्मिक भावनाएँ भी उसी समान सम्मान की अधिकारी हैं। धर्मस्थल, धार्मिक भावनाएँ, आस्थाएँ, संस्कृति-संस्कारों की रक्षा, शैक्षणिक उत्थान एवं धर्मस्थलों को सुरक्षित रखने, तथा अल्पसंख्यक समुदायों की इन सामाजिक सार्वजनिक मूलभूत आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए ही, भारतीय संविधान के कर्णधारों ने देश के धार्मिक, भाषायी, अल्पसंख्यक समुदायों के संवैधानिक अधिकारों को सुरक्षित रखने के प्रावधान एवं उनके संरक्षण को प्राथमिकता के अनुक्रम में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 से 30 में समाहित कर धार्मिक भाषायी अल्पसंख्यक समुदायों को एक संवैधानिक कवच बिना कोई भेदभाव रखे रखा है। शासन पर इन्हें संरक्षित, सुरक्षित रखने एवं उनके पूर्ण संरक्षण की जिम्मेदारी एवं दायित्व है। ये समुदाय अपनी भाषा संस्कृति की रक्षा सुरक्षा का पूर्ण संवैधानिक अधिकार रखते हैं। यही नहीं भारतीय संविधान के उपासना स्थल (विशेष उपबंध) अधिनिमय 1991 की अधिनियम संख्या 42 दिनांक 18.9.91 के तहत किसी भी उपासना स्थल के धार्मिक स्वरूप इत्यादि के संरक्षण-सुरक्षा हेतु भी स्पष्ट निर्देश दिये हैं।

जैन धर्म एक अति प्राचीन धर्म है, जिसके प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव (आदिनाथ) से शताब्दियों तक चलने वाली तीर्थंकरों की श्रृंखला में अंतिम चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर हैं, जो आज से लगभग 26 सौ वर्ष पूर्व हुए थे। **प्रसिद्ध विद्वान जी.जे. र. फरलांग ने कहा है कि जैनधर्म सम्भवत: भारत का सबसे प्राचीन धर्म है। देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की पुस्तक ('डिस्कवरी ऑफ इंडिया', पृष्ठ 72-73) में स्पष्ट लिखा है कि जैन एवं बौद्धधर्मावलम्बी शतप्रतिशत भारतीय चिन्तन एवं संस्कृति की उपज हैं, किन्तु वे हिन्दूधर्मावलम्बी नहीं हैं।** वैदिक और जैन धर्मों के मूलभूत सिद्धान्तों में दो ध्रुवों की भाँति का फासला है, (डॉ. राधाकृष्णन 'एसेज़ ऑन हिन्दू धर्म', पृष्ठ 100-173)। इत्यादि, **जो इस धर्म की अति प्राचीनता और अनादिकाल से इसके अस्तित्व की पुष्टि करते हैं।**

जैन धार्मिक समुदाय के धार्मिक रीति-रिवाज, परम्पराओं, संस्कृति, भाषा, स्थापत्य एवं कला के संरक्षण के लिये राष्ट्रीय स्तर पर जैन समुदाय की धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय की विचारधीन माँग का स्वीकार करते हुए नौ राज्यों द्वारा नीतिगत निर्णय लेकर अपने-अपने राज्यों में उन्हें अल्पसंख्यक समुदाय का दर्जा विधिवत् घोषित किया गया है, कुछ राज्यों में इसका क्रियान्वयन होना शेष है। अत: यदि राष्ट्रीय स्तर पर जैनसमुदाय को अल्पसंख्यक घोषित कर दिया जावे, तो राज्यों की विभिन्नता एवं भ्रमात्मक तुलनाओं के निराधार विश्लेषण समाप्त हो जायेंगे।

गौरतलब हो कि भारत के महारजिस्ट्रार तथा जनगणना आयुक्त, नई दिल्ली द्वारा भारत की जनगणना 2001 का विस्तृत विवरण विगत 6.9.2004 के धर्म के आंकड़ों पर प्रथम प्रतिवेदन नाम से शासन ने जारी किया है, जिसमें देश की कुल आबादी का बहुभाग हिन्दूधर्मावलंबियों समुदाय का जो कि 82 प्रतिशत है तथा धार्मिक अल्पसंख्यक समुदायों में मुस्लिम समुदाय 13.2, ईसाई समुदाय 2.41, सिख समुदाय 1.92, बौद्ध धार्मिक समुदाय 0.8 एवं जैन समुदाय 0.4 प्रतिशत, देश की कुल जनसंख्या में घोषित किए गए हैं। जो स्पष्ट प्रमाण है, इस समुदाय के धार्मिक भाषायी अल्पसंख्यक समुदाय होने के, जिसके आधार पर अन्य समुदायों को अल्पसंख्यक समुदाय घोषित किया गया है।

जैन धर्म के अनादिकाल से अकाट्य प्रमाण हैं, जो इसके अति प्राचीन होने की पुष्टि करते हैं। परिस्थितयाँ विस्फोटक हों, उसके पहले जनहित में, राष्ट्रहित में केन्द्रीय शासन को यथोचित कदम उठाने होंगे, ताकि राज्यों द्वारा अपनाई जा रही अलगाववादी नीतियों पर और भ्रामक गतिविधियों पर अविलम्ब रोक लग सके। इतिहास का परिहास बन्द होना चाहिए।

यहाँ मैं स्पष्ट कर दूँ कि जैन समुदाय को एक अल्पसंख्यक समुदाय मानते हुए इस समुदाय के हितों के संरक्षण की माँग के बावजूद मैं अलगाववादी मानसिकता को बढ़ावा नहीं देता तथा राष्ट्रीय अखंडता के लक्ष्य के प्रति पूरी तरह प्रतिबद्ध हूँ। जैन धर्मावलंबियों ने राष्ट्र की मुख्य धारा में रहकर राष्ट्र के आर्थिक, शैक्षणिक, वाणिज्यिक, राजनैतिक, नैतिक, पत्रकारिता, समाज-सेवा, वैज्ञानिक एवं स्वतंत्रता समर, आदि पक्षों के साथ चारित्रिक अभ्युत्थान में सदा ही अग्रणी भूमिका निबाही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुजरात सरकार प्रमाणिकता और इतिहास के संदर्भों सहित अपने प्रस्तुत विधेयक पर पुनः विचार करे और समाज में फैले हुए आपसी हितों के इस टकराव की रोकथाम के लिए इसे अविलम्ब वापिस ले एवं राष्ट्र के सामने आदर्श रखे।

''अहिंसा परमो धर्मः'' के अनुयायी शांतिप्रिय जैन समुदाय को देश में गौरव और प्रतिष्ठा के साथ अपने धार्मिक अस्तित्व एवं धर्मस्थलों का सम्मानपूर्वक एवं उपासाना स्थलों को श्रद्धापूर्वक अक्षुण्ण बनाये रखने का संवैधानिक अधिकार संविधान कर्णधारों द्वारा संविधान में निहित किया है। उसके स्पष्ट निर्देश राज्य सरकारों को दिये जावें एवं जैन समुदाय को राष्ट्रीय स्तर पर अल्पसंख्यक समुदाय घोषित किया जाए। ताकि, भारतीय गणतंत्र की संवैधानिकता पर उठ रहे अविश्वास को विराम मिल सके, जो राष्ट्र हित और देश की अखण्डता के लिए सर्वोपरि है।

ई-ब्लॉक, पुराना सचिवालय, भोपाल

अब मिलायें सेहत की भी कुण्डली

डॉ. ज्योति जैन

जैसे-जैसे स्वास्थ्यविज्ञान-सम्बन्धी अनुसंधान हो रहे हैं, वैसे-वैसे अनेक संक्रामक एवं वंशानुगत बीमारियों का पता चलता जा रहा है। पहले कुछ बीमारियों से लोग अनजान थे और बीमार होन पर सोचते थे कि कैसे हो गयी, पर अब तो विभिन्न जाँचों और उनके नतीजों से यह बात स्पष्ट हो गयी है कि बच्चों में स्वास्थ्यसम्बन्धी अनेक समस्याएँ उनके माँ-बाप से ही मिल रही है।

आज दुनियाँ में सबसे भयानक कहे जाने वाले 'एड्स' रोग से ग्रसित माँ-बाप के बच्चे एच.आई.बी. पीड़ित पैदा हो रहे हैं और भी अनेक वंशानुगत एवं संक्रामक बीमारियाँ बच्चों में आती जा रही हैं। अस्पतालों में अनेक दम्पति ऐसे मिलते हैं, जो कहते हैं 'काश डाक्टर साव ! हम लोगों ने अपनी बीमारी पहले बता दी होती या पता चल गया होता, तो शायद बच्चे का गर्भ में ही इलाज हो जाता या बच्चा, कम से कम उस बीमारी से तो बच जाता।'

शादी-विवाह से पहले जन्मपत्री एवं गुणों के मिलान करने की परम्परा हमारे समाज में प्रचलित है। बच्चे के जन्म के समय ही उसकी जन्मपत्री बनवा दी जाती है और बड़े होने पर लड़का-लड़की की जन्मपत्री के मिलान के आधार पर ही विवाह करते हैं। विभिन्न ग्रहों की स्थिति, उनकी अनुकूलता-प्रतिकूलता, शान्ति-अशान्ति, नक्षत्रों की स्थिति आदि को ध्यान में रखकर मिलान होता है।

कथा-ग्रन्थों में भी ज्योतिषज्ञान को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। स्वप्न के अच्छे-बुरे फल, शकुन-अपशकुन का विचार, शरीर के लक्षण, पक्षी-जानवरों की आवाज के शुभ-अशुभ विचार, अवधिज्ञानी गुरु आदि की चकित करनेवाली घटनाओं को शास्त्रों में पढ़ते आये हैं। आज भी शनिग्रह को दुख-सूचक, शुक्र ग्रह को भोग सूचक, गुरु को ज्ञानसूचक, बुद्ध को बुद्धिसूचक, मंगल को शक्ति सूचक, सूर्य को तेजसूचक, चन्द्रमा को शान्ति-सूचक, राहू-केतू को बाधासूचक माना जाता है। वर्तमान में ज्योतिषशास्त्र का वैज्ञानिक अध्ययन एवं मानव जीवन पर उसके सम्पूर्ण प्रभाव का अध्ययन किया जा रहा है। यद्यपि भारतीय सिद्धान्तानुसार तो शुभ- अशुभ कर्म के उदयानुसार व्यक्ति शुभ-अशुभ फल भोगता है।

बढ़ते हुए संक्रामक रोगों एवं वंशानुगत रोगों के कारण विशेषज्ञों का कहना है कि शादी से पहले जन्मपत्री के मिलान के साथ-साथ यदि स्वास्थ्यसम्बन्धी कुंडली (हेल्थ कुंडली) का भी मिलान कर लिया जाये, तो बहुत से बच्चे बीमारी से मुक्ति पा सकते हैं, साथ ही पैदा होगी एक स्वस्थ जेनरेशन और सम्पूर्ण परिवार को मिलेगा स्वास्थ्य-सुख। शादी करने से पूर्व लड़के-लड़की के मात्र चार पाँच टेस्ट करवाने से ही भविष्य में होनेवाली अनेक परेशानियों से बचा जा सकता है जैसे एचआईवी-टेस्ट, थैलेसीमिया, ब्लडग्रुपिंग आदि। इन टेस्टों से एक तो उन्हें अपनी बीमारी या उसके लक्षणों का पता चल जायेगा, दूसरे आने वाले बच्चे को भी बीमारी से दूर रख पायेंगे, संक्रमण का भी खतरा नहीं रहेगा।

आज अधिकांश लोग शिक्षित हैं, बच्चे शिक्षित हैं, तब इस तरह के टेस्ट करवाने में किसी भी तरह की कोई परेशानी या झिझक नहीं होना चाहिये। 'हेल्थ कुंडली' के मिलाने से बहुत सी समस्याओं से बचा जा सकता है। आज जब हमारे पास साधन हैं, तो क्यों न हम उनका उपयोग करें। अस्पतालों में आये दिन बच्चों को अनेक संक्रामक बीमारियों एवं वंशानुगत बीमारियों से जूझते हुए देखते हैं। अनेक भंयकर बीमारियाँ, जो लाइलाज हैं, ऐसे बच्चों को तिल-तिल कर मरते हुए भी देखना पड़ता है। अनेक दम्पति संतान की आशा में अनेक वर्ष निकाल देते हैं। 'हेल्थ कुण्डली' मिलाने से इन सबसे बचा जा सकता है। अतः शादी होनेवाले लड़के-लड़की की 'हेल्थ कुंडली' सम्भव हो तो अवश्य मिलायें।

पोस्ट बाक्स नं. 20
खतौली - 251 201 (उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्ता - पं. आनंद कुमार वाराणसी

जिज्ञासा - क्या शास्त्रों में आर्यिकाओं को विनय से 'वन्दामि' करने का उल्लेख मिलता है?

समाधान - शास्त्रों में आर्यिकाओं की वन्दना करते समय 'इच्छाकार' तथा 'वन्दामि' इन दोनों शब्दों का उल्लेख मिलता है। संस्कृत भावसंग्रह (आ. वामदेव) तथा सुत्त पाहुड़ (आ. कुन्दकुन्द) में आर्यिकाओं को 'इच्छाकार' करने का विधान पाया जाता है जबकि 'वन्दामि' करने के भी निम्न प्रमाण उपलब्ध होते हैं।

1. सागारधर्मामृत (अध्याय 6/12) में पं. आशाधर जी ने 'ततश्चावर्जयेत्' .... इस श्लोक की स्वोपज्ञटीका करते हुए लिखा है-

"यथा हि-यथायोग्य प्रतिपत्त्या। तत्र मुनीन् 'नमोऽस्तु' इति। आर्यिका 'वन्दे' इति। श्रावकान् 'इच्छामि' इत्यादि प्रतिपत्त्या।"

अर्थ - वहाँ मुनियों को 'नमोऽस्तु' आर्यिका को 'वन्दे' तथा श्रावकों को 'इच्छामि' इत्यादि कहकर।

2. 'नीतिसार समुच्चय' (श्री इन्द्रनदिसूरि) में इस प्रकार कहा है-

निर्ग्रन्थानां नमोस्तु स्यादार्यिकाणाञ्च वन्दना।
श्रावकस्योत्तमस्योच्चैरिच्छाकारोऽभिधीयते॥ 51

अर्थ - मुनियों को 'नमोऽस्तु', आर्यिकाओं का 'वन्दामि' तथा उत्तम श्रावकों को 'इच्छाकार' अथवा (टीकास्वोपज्ञ के अनुसार) इच्छामि कहना चाहिये।

3. सिरिवालचरिउ (कविवर नरसेनदेव) में पृष्ठ 5 पर इस प्रकार कहा है-

गणहर णिग्गंथहँ पणवेप्पिणु अज्जियाहँ वदणय करेप्पिणु।
खुल्लय इच्छायारु करेप्पिणु, सावहाणु सावय पुंछेप्पिणु॥

अर्थ - मुनियों, गणधरों और निर्ग्रन्थों को प्रणाम कर, आर्यिकाओं को वंदना कर, क्षुल्लकों को इच्छाकार कर और सावधान होकर श्रावकों से पूछकर।

इसके अतिरिक्त 'धर्मरत्नाकर' (आ. जयसेन) में आर्यिका को 'विनयक्रिया' का भी उल्लेख है।

प्रश्नकर्त्ता - सौ. सरिता जैन, नंदुवार

जिज्ञासा - केवली के सात प्रकार का योग बताया है। जबकि उनकी आत्मा को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। फिर इन योगों में कारण क्या है?

समाधान - सयोग केवली के औदारिक काय योग, औदारिक मिश्रकाययोग, कार्मणकाययोग, सत्यमनोयोग, अनुभय मनोयोग, सत्यवचनयोग तथा अनुभयवचनयोग, ये सात योग कहे गये हैं। इनके होने में निम्नलिखित कारण हैं-

1. सत्यमनोयोग तथा अनुभयवचन योग: श्री जीवकाण्ड गोम्मटसार में इस प्रकार कहा है-

मणसहियाणं वयणं दिट्ठंतप्पुव्वमिदि सजोगम्हि।
उत्तोमणोवयरेणिंदियणाणेण ही णम्मि॥ 228॥

अर्थ - मन सहित जीवों का वचनप्रयोग मनोज्ञानपूर्वक ही होता है। अतः इन्द्रियज्ञानरहित सयोग केवली में उपचार से मनोयोग कहा गया है।

अंगोवंदुदयादो दव्वमणट्ठं जिणिंद चंदम्हि।
मणवग्गणखंधाणं आगमणादो दु मणजोगो॥ 299॥

अर्थ - अंगोपांग नामकर्म के उदय से केवली के द्रव्यमन होता है। उस द्रव्य मन के लिये मनोवर्गणाओं का आगमन होने से मनोयोग कहा गया है।

उपर्युक्त आगमप्रमाणों से केवली के मनोयोग होता है। कवेली के वचन सत्य तथा अनुभय, इन दो प्रकार के होने से, उनके मनोयोग भी दो प्रकार का कहा है।

2. सत्य तथा अनुभय वचन योग - श्री धवला पु. 1 पृ. 283 तथा धवला पु. 14 पृ. 550-552 के अनुसार केवली भगवान् की दिव्यध्वनि सत्यभाषारूप तथा अनुभय भाषारूप होती है। अतः केवली भगवान् वचनवर्गणा का ग्रहण करते हैं। केवली के वचन सत्यरूप तो होते ही हैं, परन्तु केवली के ज्ञान के विषयभूत पदार्थ अनन्त होने से और श्रोता का क्षयोपशम सामान्य होने से, केवली के वचनों के निमित्त से संशय और अनध्यवसाय की उत्पत्ति हो सकती है, अतः वे वचन अनुभयरूप भी हैं। साथ ही केवली के वचनों में 'स्यात्' इत्यादि रूप से अनुभय वचन का सद्भाव पाया जाता है। इसलिये केवली की ध्वनि अक्षरात्मक भी कही गई है। इस प्रकार दो प्रकार के वचन योग केवली के होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

3. औदारिक काययोग – केवली भगवान् का शरीर औदारिक शरीर है। अत: औदारिक शरीर द्वारा उत्पन्न हुई शक्ति से जीवप्रदेशों में परिस्पंद का कारणभूत जो योग होता है वह औदारिक काययोग है। (श्री धवला पु.1/ पृ. 289, 290)।

4. औदारिक मिश्र काययोग – केवली भगवान् जब कपाट समुद्घात करते हैं, तब औदारिक मिश्रकाययोग होता है।

5. कार्मण काययोग – केवली भगवान् जब प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करते हैं, तब कार्मण काययोग होता है। (श्री धवला पु. 1/ पृ. 298)

इस प्रकार केवली के विभिन्न अवस्थाओं में सात प्रकार के योग पाये जाते हैं।

जिज्ञासा – क्या अनंतानुबंधी की विसंयोजना बिना भी, उपशमश्रेणी आरोहण हो सकता है?

समाधान – इस संबंध में निम्न आगम प्रमाण विचारणीय हैं –

1. पंचसंग्रह (प्रा.) 910 के अनुसार 11 वें गुणस्थान में 146 प्रकृतियों का सत्त्व बताया गया है, अर्थात् 148 प्रकृतियों में से नरक आयु और तिर्यञ्च आयु को छोड़कर, 146 प्रकृतियाँ सत्ता में रह सकती हैं। इसके अनुसार अनंतानुबंधी की विसंयोजना के बिना उपशमश्रेणी संभव है।

2. श्री राजवार्तिक अ. 2/3 की टीका में इस प्रकार कहा है- अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन क्रोध मान माया लोभ ये 16 कषाय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकद ये 9 नोकषाय, मिथ्यात्व सम्यगमिथ्यात्व और सम्यक्‌प्रकृति ये तीन दर्शनमोह, इसप्रकार 28 मोहनीय कर्म के भेदों के उपशमन से आत्म परिणामों की जो निर्मलता होती है, उसको औपशमिक चारित्र कहते हैं।

इस आगम प्रमाण के अनुसार भी 11वें गुणस्थान में अनंतानुबंधी की सत्ता सिद्ध होती है। **उपर्युक्त दोनों प्रमाणों के अनुसार, यह स्पष्ट है कि अनंतानुबंधी की विसंयोजना बिना भी उपशमश्रेणी आरोहण हो सकता है।**

जिज्ञासा – क्या शूद्र व्यक्ति मंदिर जी में आकर जिनबिंब दर्शन कर सकता है?

समाधान – शूद्रों के दो भेद कहे गये हैं-

1. स्पृश्य शूद्र – ये वे शूद्र हैं, जिनसे छू जाने पर भी हम को स्नान करना आवश्यक नहीं होता। जैसे –दर्जी, बढ़ई, सुनार आदि।

2. अस्पृश्य शूद्र – ये वे शूद्र हैं, जिनसे छू जाने पर हमको स्नान करना आवश्यक होता है। जैसे- मेहतर, चांडाल, दाई, डोम आदि।

उपर्युक्त में से स्पृश्य शूद्र तो मंदिर में प्रवेश कर सकते हैं, दर्शन तथा प्रवचन श्रवण आदि कर सकते हैं। परन्तु अस्पृश्य शूद्र मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकते। चा.च. आचार्य शांतिसागर जी महाराज के अनुसार इन अस्पृश्य शूद्रों को मंदिर प्रवेश नहीं करके, मानस्तंभ की प्रतिमाओं का दर्शन करना चाहिए।

जिज्ञासा – आजकल कुछ साधु बिना यज्ञोपवीत पहिने व्यक्ति से आहार नहीं लेते हैं। क्या यज्ञोपवीत पहिने हुए व्यक्ति ही पूजा तथा आहार देने के अधिकारी हैं?

समाधान – सर्वप्रथम हमको यज्ञोपवीत क्या है, इस पर विचार करना योग्य है। यदि हम शास्त्रों में इसके संबंध में जानकारी लेते हैं, तो द्रव्यानुयोग, करणानुयोग में तो इसका वर्णन है ही नहीं, चरणानुयोग के मूलाचारादि ग्रंथ तथा रत्नकरंड श्रावकाचार आदि किसी भी ग्रंथ में इसका समर्थन नहीं पाया जाता। मात्र प्रथमानुयोग के पद्मपुराण एवं महापुराण में इसका प्रसंग पाया जाता है। इसका प्रारंभ कब से हुआ, इस संबंध में आदि पुराण में इस प्रकार कहा है –

तेषां कृतानि चिह्नानि, सूत्रैः पद्माह्वयान्निधेः।
उपात्तैर्ब्रह्मसूत्राह्वैरेकाद्येकादशान्तकैः॥ 38/21॥
गुणभूमि कृताद्‌भेदात् क्लृप्तयज्ञोपवीतिनाम्।
सत्कारः क्रियते स्मैषामव्रताश्च बहिः कृताः॥ 22॥

अर्थ – पद्म नाम की निधि से प्राप्त हुए एक से लेकर 11 तक की संख्या वाले ब्रह्मसूत्र नामक सूत्र से (व्रतसूत्र से) उन सबके चिह्न किये। प्रतिमाओं के द्वारा किये हुए भेद के अनुसार जिन्होंने यज्ञोपवीत धारण किये हैं, ऐसे इन सबका भरत ने सत्कार किया तथा जो व्रती नहीं थे, उन्हें वैसे ही जाने दिया।

उपर्युक्त संदर्भ का प्रकरण यह है कि महाराज भरत ने व्रतियों का सम्मान करने के लिये, उनकी परीक्षा करने के लिये, मुख्य गृहस्थों को बुलाया। मार्ग में हरे-हरे अंकुर पुष्प, फल आदि भरवा दिये थे। तब जो हिंसा से बचने के लिये,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस मार्ग से न आकर, प्रासुक मार्ग से आये, उनका महाराज भरत ने उक्त प्रकार सम्मान किया अर्थात् जिसके प्रतिमाएँ थीं, उसको उतनी लड़वाला यज्ञोपवीत पहनाया। अर्थात् यह यज्ञोपवीत इस बात का चिह्न माना गया कि किस व्यक्ति की कितनी प्रतिमाएँ हैं। महाराज भरत ने भगवान् आदिनाथ के समक्ष अपने कार्य को इस प्रकार निवेदित किया था -

एकाद्येकादशान्तानि दत्तान्येभ्यो मया विभो।
व्रतचिह्नानि सूत्राणि गुणभूमिविभागतः॥

आदि पुराण 41-31॥

अर्थ - हे विभो, मैंने इन्हें 11 प्रतिमाओं के विभाग से व्रतों के चिह्नस्वरूप एक से लेकर ग्यारह यज्ञोपवीत दिये हैं।

अपने इस कार्य को महाराज भरत कैसा समझते थे। इसके संबंध में -

विश्वस्य धर्म सर्गस्य त्वयि साक्षात् प्रणेतरि।
स्थिते मयातिवालिश्यादि दमाचरितं विभो ॥41-32॥

अर्थ - हे प्रभो, समस्त धर्मरूपी सृष्टि को साक्षात् उत्पन्न करनेवाले आपके विद्यमान रहते हुए भी मैंने अपनी **बड़ी मूर्खता से यह काम किया है।**

इस यज्ञोपवीत की परंपरा को प्रारंभ करने के संबंध में, भगवान् आदिनाथ ने इस प्रकार कहा था -

पापसूत्रधराः धूर्ता प्राणिमारणतत्पराः।
वर्त्स्यद्युगे प्रवर्त्स्यन्ति सन्मार्गपरिपंथिनः॥ 41-53

अर्थ - पाप का समर्थन करने वाले, शास्त्र को जाननेवाले अथवा **पाप के चिह्नस्वरूप यज्ञोपवीत को धारण करनेवाले** और प्राणियों को मारने में सदा तत्पर रहने वाले, ये धूर्त ब्राह्मण, आगामी युग अर्थात् पंचमकाल में समीचीन मार्ग के विरोधी हो जायेंगे।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि किस व्रती ने कितनी प्रतिमा धारण कर रखी हैं, इसकी स्पष्टता के लिये उतनी लड़ का यज्ञोपवीत पहिनाना, भरत ने प्रारंभ किया था, जिसे भगवान् आदिनाथ ने पंचमकाल में 'धर्मविरोधी' कहा था। अर्थात् यह परंपरा गलत प्रारंभ हो गई थी।

आज कुछ श्रावक एवं साधुगण इस प्रकार कहने लगे हैं कि बिना यज्ञोपवीत पहिने, पूजा या आहार दान देने का अधिकारी नहीं है। जबकि ऐसा कहना, आगम के अनुसार बिलकुल उचित नहीं है। आजकल यज्ञोपवीत की परंपरा का कैसा मजाक बन रहा है, इसका एक सत्य प्रमाण इस प्रकार है -

सांगानेर के मंदिर में 4 मुनियों का संघ पधारा था। श्रमण संस्कृति संस्थान ने भी चौका लगाया। मैं स्वयं तथा कुछ छात्र पड़गाहन को खड़े हुए। सबसे बड़े महाराज को हमने पड़गाह लिया। चरणप्रक्षाल एवं पूजन के उपरांत आहार प्रारंभ करने से पूर्व महाराज ने मुझसे इशारे से यज्ञोपवीत के लिये पूछा। मैंने स्पष्ट मना कर दिया और उनके इशारे के अनुसार अलग खड़ा हो गया। **इतने में एक छात्र नीचे एक दूकान से एक यज्ञोपवीत खरीद लाया और पहनकर आहार देने लगा। महाराज ने आहार ले लिया। महाराज के सामने ही उसी यज्ञोपवीत को अन्य 7-8 छात्रों ने क्रम से अपने-अपने गले में डालकर आहार दे दिया और वे महाराज सब कुछ देखते हुए भी सब छात्रों से आहार लेते रहे। मैं सोचता रहा कि यह सब क्या नाटक हो रहा है?**

कुछ लोग शास्त्रों में आये हुए **'उपनयन'** शब्द को यज्ञोपवीत का रूप मानते हैं, जबकि आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के अनुसार उपनयन का अर्थ **'व्याकरणादि-विद्याध्ययनस्योप समीपे नयनम् उपनयनम्'**। अर्थात् व्याकारण आदि शास्त्र पढ़ना प्रारंभ करने को उपनयन कहते हैं।

उपर्युक्त सभी प्रमाणों के अनुसार **जैन धर्म में यज्ञोपवीत का कोई महत्त्व नहीं है। किसी भी आगमग्रंथ में ऐसा नहीं लिखा कि इसको नहीं पहननेवाला पूजा या आहार दानका अधिकारी नहीं है।** प्रतिमाधारी श्रावक यदि चाहे तो भले ही पहन ले, पर अव्रतियों को तो पहनना, आगमसम्मत नहीं है।

भूलसुधार

'जिनभाषित' अगस्त 2006 के जिज्ञासा-समाधान नं. 03 में उत्तरपुराण पृष्ठ 139-140 का अर्थ इस प्रकार लिखा था- ''धरणेन्द्र ने भगवान् को सब ओर से घेरकर अपनी फणाओं के ऊपर उठा लिया।'' इसके स्थान पर ''धरणेन्द्र भगवान् को फणाओं के समूह से आवृत कर खड़ा हो गया'' यह पढ़ा जाय। भूल के लिए खेद है।

रतनलाल बैनाड़ा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार

प्रो०प्रेम सुमन जैन को पालि-प्राकृत राष्ट्रपति अवार्ड

उदयपुर 18 अगस्त। महामहिम राष्ट्रपति महोदय, भारत सरकार द्वारा स्वतंत्रता दिवस 15 अगस्त 2005 के पावन अवसर पर देश के सेवानिवृत्त संस्कृत/अरबी-फारसी/ पालि-प्राकृत के 22 मूर्धन्य विद्वानों को राष्ट्रपति अवार्ड प्रदान करने की घोषणा की है। उनमें राजस्थान में उदयपुर के प्रोफेसर प्रेम सुमन जैन को पालि-प्राकृत भाषा के अवार्ड के लिए चुना गया है। डॉ० जैन को यह राष्ट्रपति पुरस्कार आगामी दिनों में राष्ट्रपति भवन में आयोजित समारोह में प्रदान किया जायेगा। पुरस्कार स्वरूप राष्ट्रपति प्रशस्ति के साथ प्रो० जैन को भारत सरकार द्वारा प्रतिवर्ष पचास हजार रुपये की अध्येतावृत्ति आजीवन प्राप्त होगी।

नन्दलाल नावेडिया, सचिव

उदयपुर (राजस्थान) में भगवती-आराधना-अनुशीलन संगोष्ठी सम्पन्न

उदयपुर (राज०) में 2006 के ऐतिहासिक चातुर्मास में विराजित आध्यात्मिक सन्त मुनिपुंगव श्री 108 सुधासागर जी महाराज ससंघ के पावन सान्निध्य में 1, 2, एवं 3 अक्टूबर 2006 को अ.भा. त्रयोदश विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसका विषय था- '**भगवती-आराधना-अनुशीलन सल्लेखना के परिप्रेक्ष्य में**'। इस संगोष्ठी में देशभर से पधारे 70 विद्वानों ने अपने शोध आलेखों को प्रस्तुत किया और लगभग 250 विद्वानों ने संगोष्ठी की परिचर्चा में भाग लिया। संगोष्ठी के प्राय: सभी शोध आलेखों पर जैनविद्या के निष्णात मनीषी मुनिश्री सुधासागर जी ने अपनी समीक्षा प्रस्तुत की, जो इस संगोष्ठी की विशेष उपलब्धि रही।

उद्घाटन सत्र के **प्रमुख अतिथि मोहनलाल सुखाड़िया के कुलपति प्रोफेसर बी.एल. चौधरी** ने अपने उद्बोधन में कहा कि बिना वैराग्य भावना के समाधिमरण नहीं होता। अत: समाधिमरण की साधना ईश्वरत्व के साथ जीने की साधना है। इसका आत्मघात आदि आवेश में की जाने वाली हिंसक घटनाओं के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। मीडिया की यह अपरिपक्वता है कि उसने तपस्यायुक्त संथारा आदि को सतीप्रथा, दयामृत्यु आदि के साथ जोड़कर मिथ्या प्रचार किया। समाचार जगत् को भारत की धार्मिक परम्पराओं का गहराई से अध्ययन करना चाहिए। आत्मा के अमरत्व को मानने वाले इस देश में मृत्यु का भय कैसा? जैन परम्परा ने सही रूप में मरण और जीवन की व्याख्या की है। यह संगोष्ठी इस दिशा में सार्थक बनेगी, ऐसी आशा है।

परम पूज्य मुनिश्री सुधासागर जी ने अपने उद्बोधन में कहा कि साधना का जीवन जीने पर ही मरण की कला सीखी जा सकती है। भगवती आराधना के ग्रन्थकार स्वयं साधक मुनि थे। उन्होंने बारीकी से समाधिमरण के प्रयोगों को समझाया है। विद्वानों को उन पर ध्यान देना चाहिए। समाधिमरण तपस्या की चरम परिणति है। उससे जीवन-मरण से छुटकारा मिलता है।

संगोष्ठी निदेशक प्रोफेसर प्रेम सुमन जैन ने संगोष्ठी के निष्कर्ष के प्रमुख बिन्दुओं पर प्रकाश डालते हुए कहा कि यह प्राकृत भाषा के प्रमुख ग्रन्थ भगवती आराधना और समाधिमरण विषय पर एक ऐतिहासिक संगोष्ठी है, जिसमें 64 शोध आलेख प्रस्तुत हुए और जिसमें लगभग 300 जैनविद्या के विद्वानों ने प्रतिभागी के रूप में भाग लिया। विद्वानों का अभिमत है कि आचार्य शिवार्य दिगम्बर परम्परा के प्राकृत ग्रन्थकार थे, जिनका समय लगभग ईसा की प्रथम शताब्दी होना चाहिए। उनका यह ग्रन्थ भगवती आराधना प्राकृत काव्य, भाषा, दर्शन और भारतीय संस्कृति का समृद्ध ग्रन्थ है। इसका मुख्य विषय-समाधिमरण की अवधारणा और प्रक्रिया पर प्रकाश डालना है। संगोष्ठी का यह सर्वसम्मति से प्राप्त अभिमत है कि सल्लेखना की साधना जीवन के आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त करने की एक अहिंसक और विवेकपूर्ण साधना पद्धति है। जैनधर्म की यह प्राचीन तपस्या साधना है। इसकी आत्मघात, इच्छामृत्यु, दयामृत्यु, सतीप्रथा आदि से कोई समानता नहीं है।

प्रोफेसर प्रेम सुमन जैन, निदेशक, संगोष्ठी

शास्त्रिपरिषद् एवं विद्वत्परिषद् का प्रथम संयुक्त अधिवेशन

उदयपुर (राजस्थान) स्थित श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मंदिर, उदासीन आश्रम, अशोकनगर में आध्यात्मिक संत मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज, क्षुल्लक श्री गम्भीरसागर जी महाराज एवं क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी महाराज के सान्निध्य में अ.भा.दि. जैन शास्त्रिपरिषद् एवं अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् का प्रथम खुला संयुक्त अधिवेशन डॉ. श्रेयांस कुमार जैन (अध्यक्ष-अ.भा.दि. जैन शास्त्रिपरिषद्) एवं डॉ. शीतलचन्द जैन (अध्यक्ष-अ.भा.दि.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन विद्वत्परिषद्) की अध्यक्षता एवं प्रा. अरुण कुमार जैन (महामंत्री-शास्त्रिपरिषद्) एवं डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन (मंत्री-विद्वत्परिषद्) के कुशल संयोजकत्व में दि. 4 अक्टूबर 2006 को भव्य सभागार में सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर आचार्य ज्ञान सागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर की ओर से प्रदत्त **महाकवि आचार्य ज्ञानसागर पुरस्कार प्रो. प्रेम सुमन जैन, प्रो. फूलचन्द प्रेमी, डॉ. कपूर चन्द जैन, पं. लालचन्द जैन राकेश एवं डॉ. उपयचन्द जैन को प्रदान किये गये।** इन पुरस्कारों में से प्रथम दो के पुण्यार्जक श्री ज्ञानेन्द्र गदिया (श्री नाथूलाल राजेन्द्र कुमार जैन चेरिटेबल ट्रस्ट, सूरत) एवं शेष तीन के पुण्यार्जक श्री अशोक पाटनी (आर.के. मार्बल्स) थे। पुरस्कारों की इसी शृंखला में विद्वत्परिषद् के द्वारा प्रदत्त वर्ष 2005 एवं 2006 के पूज्य क्षुल्लक श्री गणेशप्रसाद वर्णी स्मृति पुरस्कार **डॉ. रमेशचन्द जैन** को जैन धर्म की मौलिक विशेषाताएँ कृति के लिए एवं **डॉ. जयकुमार जैन को** पार्श्वनाथचरित के हिन्दी अनुवाद के लिए तथा गुरुवर्य पं. गोपाल दास वरैया स्मृति पुरस्कार जैन धर्म की प्रभावना के लिए **डॉ. कमलेश कुमार जैन** एवं **डॉ. कस्तूरचन्द जैन** सुमन को प्रदान किये गये।

इस अवसर पर परमपूज्य मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज की डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन (बुरहानपुर) द्वारा संपादित तीन प्रवचन कृतियों दस धर्म सुधा, वसुधा, अध्यात्म सुधा मैं कौन हूँ?, जैन धर्म दर्शन (डॉ. रमेशचन्द जैन), जैन दर्शन में में अनेकान्तवाद एक परिशीलन (डॉ. अशोक कुमार जैन), आचार्य ज्ञानसागर संस्कृत हिन्दी कोश (डॉ. उदयचन्द जैन), वीरोदय महाकाव्य और भगवान् महावीर के जीवन चरित का समीक्षात्मक अध्ययन (डॉ. कामनी जैन), ज्योतिष विज्ञान (पं. सनत कुमार विनोद कुमार जैन), जयोदय महाकाव्य का दार्शनिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन (डॉ. रेखा रानी), एवं पार्श्वज्योति मासिक पत्रिका के मुनिपुंगव श्री सुधासागर विशेषांक आदि अनेक कृतियों का विमोचन किया गया। पुण्यार्जकों की ओर से लगभग 4 लाख रुपये का साहित्य विद्वानों एवं समाज को वितरित किया गया।

अधिवेशन में समागत विद्वानों को शुभाशीर्वाद देते हुए प.पू. मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज ने कहा कि विद्वान् अपने ज्ञान के साथ-साथ चारित्र का परिष्कार करें। उन्होंने कहा कि दिगम्बर जैन विद्वानों की जैन समाज में दो ही परिषदें मान्य हैं- एक शास्त्रिपरिषद् और दूसरी विद्वत्परिषद्। शेष जो भी विद्वानों के नाम पर समिति, संघ, महासंघ, परिषदें, सभा आदि बने हैं, वे व्यक्तिनिष्ठा एवं कुछ साधुओं की अहंपूर्ति के साधन हैं। अतः समाज में न उनकी कोई भूमिका है और न आगे होगी। उन्हें अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए अन्ततः इन्हीं दो परिषदों में विलीन होना होगा। मुनिश्री ने विद्वानों को आचारसंहिता के पालन पर बल दिया, जिस पर विद्वानों ने अपने सहमति व्यक्त की।

अधिवेशन में सात प्रस्ताव पास किये गये, जिनमें तीसरा प्रस्ताव इस प्रकार है-

प्रस्ताव क्र. ३-सिद्ध क्षेत्र कुण्डलपुर में नवीन मन्दिर का निर्माण

अ.भा.दि. जैन शास्त्रिपरषिद् एवं अ.भा.दि. जैन विद्वत्पषिद् का संयुक्त अधिवेशन यह प्रस्ताव करता है कि सिद्ध क्षेत्र कुण्डलपुर (दमोह) के कुछ समाजविरोधी लोगों ने नवीन मन्दिर के निर्माण में अनेक अवरोध उपस्थित किए हैं, जो समाज, धर्म और संस्कृति के हित में नहीं हैं। समस्त विद्वान् समाज के सभी वर्गों से पुरजोर अपील करते हैं कि देवाधिदेव भगवान ऋषभदेव की मूर्ति, जो बड़े बाबा के नाम से प्रख्यात है तथा नवमन्दिर में उच्चासन पर विराजमान है, वहाँ भव्य मन्दिर का निर्माण हो और समस्त अवरोध दूर करने का प्रयास कर मैत्रीभाव का विकास हो।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन
मंत्री- अ.भा.दि.जैन विद्वत्परिषद

अभिनव कृति का विमोचन समारोह संपन्न

राष्ट्र संत आ. श्री विद्यासागर मुनि महाराज की जिनधर्म प्रभाविका विदुषी शिष्या आर्यिका रत्न मृदुमति माताजी द्वारा लिखित पुस्तिका '**पुरुदेव स्तवन**' के विमोचन समारोह अमरकंटक सहित अशोकनगर, सागर, कटंगी जबलपुर, बण्डा, दमोह, बरगी, पनागर, गोटेगाँव, गढ़ाकोटा, रहली, भोपाल, पथरिया, सिगरामपुर, शाहपुर, जबेरा, कुण्डलपुर, ललितपुर, और इंदौर में भारी उत्साह के साथ संपन्न किये गये, जिनमें अनेक स्थानों पर प्रवचन प्रवीण विदुषी बहिन ब्र. पुष्पा दीदीजी ने उपस्थित होकर पुस्तक एवं समारोह के औचित्य पर प्रकाश डाला एवं पुस्तक में वर्णित कुण्डलपुर स्थित बड़े बाबा एवं छोटे बाबा की युग प्रवर्तक घटना का सुन्दर विवरण प्रस्तुत किया। पुस्तक की लोकप्रियता देखते हुए बड़े बाबा के भक्तों ने पुस्तक की प्रमुख सामग्री का संगीत बद्ध सस्वर संयोजन सी.डी. और कैसिट में किया। फलतः उक्त समस्त स्थानों पर सी.डी. और कैसिट का लोकार्पण का सिलसिला भी चला।

सुरेश जैन सरल, 293, गढ़ाफाटक, जबलपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिश्री क्षमासागर जी की कविताएँ

उसने कहा

मौत ने आकर
उससे पूछा,
मेरे आने से पहले
वह,
क्या करता रहा?
उसने कहा,
आपके स्वागत में
पूरे होश
और जोश में
जीता रहा।
सुना है
मौत ने
उसे प्रणाम किया
और कहा,
अच्छा जियो
अलविदा।

सोच

एक वे हैं
जो ये सोच कर
जी रहे हैं
कि एक दिन
मरने का तय है
तो आज अभी
ठाठ से जियो
एक तुम हो
जो ये सोच कर
मर रहे हो
कि आज अभी
यदि मौत आयी है
तो शान से मरो
ये तो हम हैं
जो इस सोच में
न जी पा रहे हैं
न मर पा रहे हैं
कि तुम क्यों
शान से मर रहे हो
कि वे क्यों
ठाठ से जी रहे हैं?

ज़िन्दगी-भर

हम जिन्दगी-भर
जीते हैं
कुछ इस तरह
कि जैसे
जीना नहीं चाहते
जीना पड़ रहा है
और मरते वक्त
मरते हैं
कुछ इस तरह
कि जैसे
मरना नहीं चाहते
मरना पड़ रहा है
शायद इसीलिए
हमें जीवन
दुहराना पड़ रहा है!

वीर देशना

जो विवेकी जन परीक्षा करके निर्दोष देव, शास्त्र, गुरु और चारित्र की उपासना किया करते हैं, वे शीघ्र ही कर्म-सांकल को काटकर पवित्र व अविनश्वर मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि नं. UPHIN/2006/16750

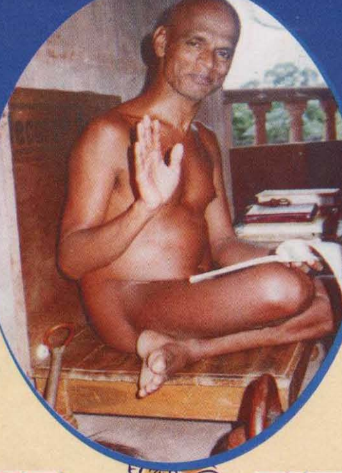

मुनि श्री योगसागर जी

श्रेयांसनाथ स्तवन

(इन्द्रवज्रा छन्द)

1

श्रेयांस तीर्थेश्वर को सुध्याऊँ।
पादार विन्दो उर में बिठाऊँ॥
आशीष देदो वह शक्तिशाली।
जो कर्म वल्ली मिट जाय सारी॥

2

पावित्रता तो रसना हुई है।
जो आप के ही स्तव से हुई है॥
संसार में क्या वह वस्तु ही है।
पावित्रता ही जिससे मिली है॥

3

सौभाग्य मेरा तव कीर्ति गाऊँ।
पुण्यानुबन्धी बहु पुण्य पाऊँ॥
यों पाप का संवर निर्जरा है।
शुद्धोपयोगी बनना हमें है॥

4

मिथ्यात्व की घोर अमा निशा है।
तो भी न आस्था डिगती कहाँ है॥
सम्यक्त्व की भोर यहाँ दिखाये।
कैवल्य का सूर्य अवश्य आये॥

5

ये धर्म नेता शिवमार्ग के हैं।
जो कर्म के पर्वत भेदते हैं॥
ये विश्व के सर्व पदार्थ ज्ञाता।
वन्दू सदा मैं शिर को झुकाता॥

6

है भक्ति-गंगा डुबकी लगायें।
जो पाप मैला धुल के बहाये॥
ये कार्य तो पंचम काल का है।
प्रमुखतया भक्ति प्रधान ही है॥

वासुपूज्यनाथ स्तवन

(इन्द्रवज्रा छन्द)

1

श्री बाल ब्रह्मेश्वर वासुपूज्य।
चम्पापुरी की रज धूल पूज्य॥
देवेन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्र पूजे
जो आज भी तीर्थ महान् प्यारे॥

2

आनन्ददायी शिवमार्ग-दर्शी।
जो भेद विज्ञान अपूर्व-दर्शी॥
मिथ्या निशा को क्षण में मिटाये।
अरहन्त-मुद्रा सुख को दिलाये॥

3

पुण्याभिलाषी दिन रात पूजें।
रागी कुलिंगी देवता ये॥
ये तो सदा संसृति में भ्रमायें।
आपत्ति से ही सबही धिरे हैं॥

4

था घोर वैराग्य विवाह त्यागा।
जो मुक्ति स्त्री में अनुराग जागा॥
देवर्षि लोकन्तिक देव आये।
है भाग्यशाली तव कीर्ति गाये॥

5

है भक्ति की शक्ति अचिन्त्यता है।
तृष्णा किसी की लवमात्र ना है॥
नाना तरंगे उठती नहीं हैं।
एकाग्रता से स्तव जागती है॥

प्रस्तुति - रतनचन्द्र जैन

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, 210, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं 1/205 प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित। **संपादक :** रतनचन्द्र जैन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org